ISSN: 2583-391X

सोच भारत की

इन्द्रप्रस्थ शोध संदर्श

वर्ष 6, अंक 1, वि. सं. 2081-82
जनवरी – मार्च, 2025, (युगाब्द – 5126-27)

Quarterly peer-reviewed journal

सोच भारत की

इन्द्रप्रस्थ शोध संदर्श

परामर्श

श्री अजेय कुमार, स्वतंत्र चिन्तक, दिल्ली

प्रो. योगेश सिंह, कुलपति, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. एस. पी. बंसल, कुलपति, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

प्रो. बृजेश कुमार पाण्डेय, रेक्टर, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. सुषमा यादव, प्रति कुलपति, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़

प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा, पूर्व कुलपति, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा

प्रो. रंजना अग्रवाल, निदेशक, सीएसआईआर-राष्ट्रीय विज्ञान संचार एवं नीति अनुसंधान संस्थान, दिल्ली

प्रमुख प्रबंधक

श्री विनोद शर्मा 'विवेक', प्रमुख, इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र, नयी दिल्ली

प्रधान संपादक

प्रो. राजेंद्र कुमार पाण्डेय, आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

संपादक

डॉ. कुमार सत्यम, सहायक आचार्य, समाज कार्य विभाग, डॉ भीम राव अंबेडकर महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक समिति

प्रो. राकेश कुमार पाण्डेय, आचार्य, भौतिकी विभाग, किरोड़ी मल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. सुनील कुमार कश्यप, आचार्य, वाणिज्य विभाग, शहीद भगत सिंह महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. राम निवास सिंह, प्रवक्ता, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली सरकार, दिल्ली

डॉ. सोनिया, सहायक आचार्य, संस्कृत, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, दिल्ली

डॉ. विकास शर्मा, सहायक आचार्य, संस्कृत, पाली, प्राकृत और प्राच्यभाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

श्री दीपक सिंह, शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

मीडिया आई. टी. एवं प्रचार-प्रसार

डॉ. मनीष कुमार सिंह, सहायक आचार्य, संगणक विज्ञान विभाग, श्यामा प्रसाद मुख़र्जी महाविद्यालय, दिल्ली

डॉ. दीपक मित्तल, सहायक आचार्य, संगणक विज्ञान विभाग, दीन दयाल उपाध्याय महाविद्यालय, दिल्ली

श्री मनोज कुमार, सहायक आचार्य, यांत्रिकी विभाग, भास्कराचार्य महाविद्यालय, दिल्ली

पंजीकृत कार्यालय

एस 44-45, दुकान नंबर 1,
परमपुरी, उत्तम नगर,
नई दिल्ली – 110059
Email: ipakendra@gmail.com

संदर्भ पुस्तकालय

1/7, श्रीराम कुटीर, द्वितीय तल,
चाणक्य प्लेस, C-1, जनक पुरी,
नई दिल्ली - 110059
सचल दूरभाष: 981149924, 9868084938

संपादकीय

This issue of the journal presents an intellectually diverse collection of articles that together engage with the foundational, cultural, spiritual, and political dimensions of Indian thought. The contributions included here not only reaffirm the depth of India's civilizational heritage but also situate it meaningfully in dialogue with contemporary academic and societal concerns.

The opening article, *"भारतीय संविधान की प्रस्तावना में वर्णित मूल्य एवं संस्कृत वाङ्मय,"* analyses the principles articulated in the Preamble of the Indian Constitution through the lens of Sanskrit literary traditions. This study reminds us that values such as justice, liberty, equality, and fraternity are not abstract ideals borrowed from elsewhere but are deeply rooted in indigenous philosophical discourses. The Constitution, therefore, emerges as both a modern framework for governance and a continuation of India's intellectual legacy. *"भारतीय सनातन धर्म की आधुनिक विश्व में उपादेयता,"* examines Sanatan Dharma as a philosophy of life that transcends ritualistic dimensions to provide ethical and spiritual guidance for humanity. In an age of ecological imbalance and global fragmentation, this article underscores its enduring relevance in shaping discourses of harmony and sustainable living.

"Search on Research – Vedas and Upanishads through a Bibliometric Analysis," applies bibliometric tools to classical sources and bridges traditional scholarship and modern research methodologies, demonstrating the continuing vitality of ancient texts in shaping academic trajectories. *"भारत की पारंपरिक सांस्कृतिक व्यवस्था और उसका वर्तमान विश्व पर प्रभाव,"* complements this inquiry by highlighting the global influence of India's cultural systems, revealing how traditions rooted in antiquity continue to shape and inspire contemporary societies across the world. *"Evaluating India's Economy and Political Development through the Perspective of Capability Approach,"* moves beyond economic growth metrics and underscores the importance of dignity, freedom, and opportunity as fundamental measures of progress, providing a critical lens through which to understand India's democratic and developmental trajectory.

The अंतर्दृष्टि section deepens this reflective engagement, *"मूल्यशिक्ष्या: पाठ्यक्रम,"* draws attention to the significance of value-based education in today's curriculum, reaffirming the role of pedagogy in cultivating ethical citizens. *"वैश्विक स्वास्थ्य, मानसिक संतोष एवं आनंद की अनुभूति के लिए भारतीय अध्यात्म की आवश्यकता"* foregrounds the relevance of Indian spirituality in addressing global crises of well-being and mental health, and *"Emergence of Hindutva in 21st Century"* provides a nuanced perspective on contemporary political transformations and their implications for Indian society. The issue also includes a book review of *"The Coming Wave,"* offering a critical engagement with forward-looking global concerns. Concluding the volume, the विविधा section presents an enchanting poem, "शिवाय," which poetically paints a picture of Shiva.

Taken together, the articles in this issue reflect the vibrancy of Indian intellectual traditions and their continued dialogue with modern realities. By weaving together scholarship on constitutional values, cultural continuity, spiritual ethics, political development, and literary expression, this edition affirms the enduring relevance of India's past while opening pathways for reimagining its future.

Editor

अनुक्रमाणिका

पृष्ठ

संपादकीय i-ii

शोध-पत्र

- **भारतीय संविधान की प्रस्तावना में वर्णित मूल्य एवं संस्कृत वाङ्मय** 2-9
  Rajat Kohly
- **भारतीय सनातन धर्म की आधुनिक विश्व में उपादेयता** 10-16
  Kaushal Kishor Prajapat
- **Search on Research- Vedas and Upanishads through a Bibliometric Analysis** 17-28
  Dr. Priyanka Puri
- **भारत की पारंपरिक सांस्कृतिक व्यवस्था और उसका वर्तमान विश्व पर प्रभाव** 29-35
  प्रीत पाल
- **Evaluating India's Economy and Political Development through the Perspective of Capability Approach** 36-46
  Dr. Abhay Vikram Singh
  Anchal Chauhan

अंतर्दृष्टि

- **मूल्यशिक्ष्या: पाठ्यक्रम:** 48-54
  Sandeep Kumar Sharma
- **वैश्विक स्वास्थ्य, मानसिक संतोष एवं आनंद की अनुभूति के लिए भारतीय अध्यात्म की आवश्यकता** 55-57
  प्रज्ञा माहेश्वरी
- **Emergence of Hindutva in 21st Century** 58-63
  Anup Kumar Mahto

पुस्तक समीक्षा

- **The Coming Wave** 65-66
  डॉ. मनीष कुमार सिंह

विविधा

- **शिवाय:** 68-69
  भावना शर्मा

शोध-पत्र

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में वर्णित मूल्य एवं संस्कृत वाङ्मय: संविधान के उद्देश्यों को निर्धारण करने के विशेष संदर्भ में

रजत कोहली
शोध छात्र,
राजनीति विज्ञान विभाग,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

भारत में शरीर को नश्वर एवं आत्मा को कभी ना नष्ट होने वाला समझा जाता है यानि आत्मा वह तत्व है जो जीवन को प्रवाहित होने वाली शक्ति को सँजोये हुए है। जीवन की पुष्टि करने वाला वह तत्व, जिसके बिना जीवन की कल्पना करना संभव नहीं लगता। इसी प्रकार भारत में संविधान की प्रस्तावना को संविधान की आत्मा के रूप में उल्लेखित करना उचित ही है, क्योंकि वह भी संविधान के मूल तत्वों को अपने भीतर समाएं हुए है जिसके माध्यम से संविधान की व्याख्या की जाती है। सुभाष कश्यप अपनी पुस्तक 'हमारा संविधान' में प्रस्तावना के विषय में वर्णन करते हुए कहते हैं 'संविधान की प्रस्तावना उन मौलिक मूल्यों एवं उद्देश्यों को अपने भीतर समाएं हुए है जो भविष्य में हमे प्राप्त करने हैं एवं जिन्हें हमारे महापुरुषों द्वारा प्राप्त करने योग्य समझा गया था'।[1] यही नहीं बल्कि न्यायाधीश हिदायतुल्लाह गोलकनाथ- पंजाब राज्य विवाद में प्रस्तावना का वर्णन करते हुए कहते है 'प्रस्तावना संविधान की आत्मा है जो अपरिवर्तनशील एवं शाश्वत है।'[2] सर्वोच्च न्यायलय के मुख्य न्यायाधीश सीकरी केशवानन्द भारती- भारत का संघ विवाद में प्रस्तावना की व्याख्या करते हुए कहते है 'संविधान की व्याख्या प्रस्तावना में वर्णित मूल्यों की दृष्टि से होनी चाहिए'। प्रस्तावना को संविधान के भाग के रूप में ही देखा जाता है परंतु इस पर 1960 में हुए बेरूबरी मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा संदेह जाहीर किया गया परंतु इस पर केशवानन्द भारती- भारत का संघ, निर्णय में संविधान सभा में हुई चर्चा के आधार पर प्रस्तावना को संविधान का भाग माना गया।[3]

भारतीय संविधान की ही तरह संविधान में वर्णित प्रस्तावना के लिए भी यही समझा जाता है कि यह भी विदेशी संविधान से अनुप्राणित है, विशेषकर अमेरिका के संविधान को इसका उद्भव स्थान समझा जाता है। इसका सबसे बड़ा कारण यह भी है कि अमेरिकी संविधान में प्रयुक्त शब्दावलियों का इस्तेमाल इसमें किया गया है। हालांकि यह विचारणीय है कि भारत की प्रस्तावना अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया एवं कनाडा से कहीं अधिक विस्तृत एवं विशाल है।[4] संविधान सभा के बहुत से सदस्यों का भारतीय संस्कृत वाङ्मय से परिचय एवं उस पर उनका अटूट विश्वास भी संविधान को इतना विस्तृत बनाता है जिससे वह अन्य संविधानों की अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञान विभूषित है। यदि हम भारतीय साहित्य का इस दृष्टि से अध्ययन करें तो हमे अनायास ही हर ग्रंथ के उद्देश्यों का वर्णन ग्रंथ के आरंभ में ही प्राप्त हो जाएगा जिस प्रकार संविधान की प्रस्तावना को उद्देशिका के रूप में लिया गया है। कहीं-कहीं पर तो

बिल्कुल वही भाषा या उससे भी विस्तृत (जैसे लोक शब्द का प्रयोग होना) भी मिलेगी जो आधुनिक संविधान में प्रयुक्त होती है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे भारतीय साहित्य का इन आधुनिक ग्रंथों पर प्रभाव हो। प्रस्तुत अध्ययन का विभिन्न उद्देश्यों में से यह भी एक उद्देश्य है कि भारतीय संस्कृत साहित्य का अध्ययन कर प्रभावों को उजागर करना। भारतीय साहित्य में उन सभी मूल्यों के सरलता से दर्शन हों जाते हैं जिनका प्रस्तावना में वर्णन मिलता है। तो ऐसा लगना भी स्वाभाविक ही है कि जिस दर्शन को हम वर्षों से अपने जीवन में उतारे हुए है, जिस पर चिंतन, मनन एवं निदिध्यासन इतने लंबे समय से चल रहा है उसे हम कहीं ओर से किस प्रकार प्राप्त कर सकते है। प्रस्तुत अध्ययन में इस पर विस्तार से चर्चा की गई है।

संविधान की प्रस्तावना और भारतीय संस्कृत वाङ्मय

जैसा की पूर्व में भी कहा गया कि आज हम संविधान की प्रस्तावना को संविधान का भाग बनाने के लिए विभिन्न देशों के संविधान से अनुप्राणित हैं एवं प्रस्तावना में चर्चा किए गए मूल्यों को भी भिन्न-भिन्न देशों से लिया मानते हैं। बुद्धिजीवियों द्वारा 1215 मैग्ना कार्टा को आधुनिक संविधानवाद एवं व्यवस्था के निर्माण के लिए सर्वप्रथम प्रयास के रूप में देखा जाता है। परंतु इस बात में कोई विवाद नहीं है कि व्यवस्थाओं के पीछे परंपराओं का बड़ा योगदान होता है और परंपराएँ एक दिन में निर्मित नहीं होती परंतु लंबे समय में लोक में व्याप्त होती हैं। उन्हीं परंपराओं के आधार पर व्यवस्थाएँ बनती हैं। संविधान की प्रस्तावना का संविधान के उद्देश्यों, लक्ष्य के रूप में अपनाएँ जाना एक ऐसी परंपरा है जो भारत में संस्कृत के सम्पूर्ण साहित्य में देखने को मिलती है। यानि भारत में किसी भी साहित्य के निर्माण के समय पूर्व में उसके उद्देश्यों का वर्णन किया गया है। ऋषि अपनी प्राथनाओं में अपने उद्देश्यों के वर्णन कर रहें हैं। उपनिषदों में शांति मंत्र के माध्यम से यही बताया जा रहा हैं कि इन उपनिषदों को पढ़कर क्या प्राप्त होगा एवं यदि किसी उपनिषद का भाव समझना है तो किस प्रकार उसे शांति मंत्र से मिलाकर पढ़ना ठीक होगा जैसा की संविधान की प्रस्तावना के विषय में भी कहा जाता है। इसी प्रकार से ब्रह्मसूत्र की भी उपयोगिता है, उपनिषदों को व्यवस्थित रूप से समझने हेतु। कोई भी गोष्ठी या शुभ कार्य कल्याण मंत्र के साथ आरंभ करने का भी यही उद्देश्य समझा जाता है। अब यहाँ पर यह लग सकता है कि संविधान के रक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायालय है एवं विधि का शासन भी प्रस्तावना को व्यवस्थाओं के निर्माण के लिए अपरिहार्य मानता है जो भारत में नहीं दिखता। हालांकि यह व्यवस्थाएँ भारत में भी है पर भारत में एक ऐसी व्यवस्था भी है जो इन सभी व्यवस्थाओं से कहीं अधिक शक्तिशाली है वह है लोक की व्यवस्था, जो सर्वोच्च है जिसको आज नागरिक समाज के रूप में निरूपित किया जाता है हालांकि लोक नागरिक समाज से कहीं अधिक विस्तृत व्यवस्था है। जॉन लॉक को नागरिक समाज का प्रणेता समझा जाता है जबकि भारत में यह व्यवस्था लंबे समय से विद्यमान है, जो कि भारत में उन किसी भी व्यवस्था की प्रस्तावना के उद्देश्यों के अभिभावक के रूप में काम करती है जिन्हें हम उद्देशिका के समतुल्य मानकर चलते हैं। आज जब हम विधि के शासन को न्यायसंगत मानकर चलते हैं पर हमे इस बात का आभास भी अवश्य ही होता होगा कि न्यायिक व्यवस्था में कितनी त्रुटियाँ होती हैं एवं किस प्रकार संस्थानीकरण व्यवस्थाओं को किस प्रकार रूढ किया। वहीं अगर भारत की व्यवस्थाओं की उपयोगिता है, जहाँ आवश्यकता है वहाँ संस्थाएँ भी हैं परंतु लोक सर्वोपरि हैं। इस प्रकार भारत में लंबे समय से साहित्य एवं व्यवस्थाओं में उद्देश्यों का विशेष योगदान हैं जिसकी लोक के द्वारा रक्षा की जाती हैं।

संप्रभुता : राज्य का आधार

प्रस्तावना में प्रथम मूल्य के रूप में भारत को संप्रभु यानि सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य के रूप में निरूपित किया गया है। इसका अर्थ है राज्य किसी भी कार्य को करते हुए बाह्य एवं आंतरिक हस्तक्षेपों से स्वतंत्र होगा। यानि राज्य किसी भी अन्य राज्य के अधीन ना होकर सम्पूर्ण रूप से स्वयं का प्रभु होगा। संप्रभुता राज्य के उन चार तत्वों में से एक है जिससे मिलकर राज्य बनता है अन्य तीन तत्व हैं सरकार, क्षेत्र, जनसंख्या। गार्नर एवं गेटेल द्वारा भी राज्य के यही चार तत्व बताएँ गए हैं। विचारकों द्वारा संप्रभुता के सिद्धांत को सोलहवी सदी के फ्रांसीसी विचारक जीन बोदीन के संप्रभुता के सिद्धांत तक ले जाया जाता है जिसमे वह संप्रभुता को अविभाज्य मानता हैं एवं इससे किसी एक व्यक्ति या समूह में निहित बताता हैं। वहीं आगे उन्नीसवी शताब्दी में जॉन ऑस्टिन द्वारा अपनी पुस्तक *'लेकचर्स ऑन जुरिसप्रूडन्स'* में संप्रभुता को अविभाज्य तो माना ही इसके अतिरिक्त इस ऐसे व्यक्ति या समूह में निहित माना जो सर्वोपरि है एवं सभी को उसके अधीन माना। हालांकि इसके विपरीत ही लोकप्रिय संप्रभुता का सिद्धांत भी फ्रांस में रूसो द्वारा प्रतिपादित किया गया जिसमें संप्रभुता लोक में निहित मानी गई। यही वह व्यवस्था है जो भारत के सबसे करीब दिखाई देती हैं। जैसे की पूर्व में भी चर्चा की जा चुकी है कि भारत में लोक सर्वोपरि हैं एवं लोक में ही सभी शक्तियां निहित दिखती हैं। दंड के वर्णन को सुनकर यह लग सकता हैं कि दंड सर्वोपरि हैं क्योंकि जिस प्रकार से महाभारत के शांतिपर्व के 14-15 अध्याय में दंड की महिमा गाई गई है एवं कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में दंड की उपयोगिता को स्थापित किया हैं परंतु वहीं पर लोक के सर्वोपरि होने के भी साक्ष्य बहुतायत में उपलब्ध हैं। जैसे कौटिल्य अपनी अर्थशास्त्र में लिखते हैं

तीक्ष्णदंडो हि भूतानामुद्वेजनीयः। मृदुदण्डः परिभूयते। यथार्हदंडः पूज्यः।[5]

इस प्रकार लोक सर्वोपरि समझा जाता हैं। जब यहाँ लोक की चर्चा की जाती हैं तो यह समझना आवश्यक हो जाता है कि लोक हैं क्या? लोक से अभिप्राय केवल जनसंख्या से ना होकर पशु-पक्षियों एवं हर प्रकार के जीवों से हैं। इनके बीच का परस्पर संबंध ऐसी व्यवस्था का निर्माण करता हैं जिसमे सभी एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं जिसपर भारत का सम्पूर्ण दर्शन आधारित हैं जिससे कालांतर में दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद की संकल्पना का नाम दिया। वस्तुतः यहाँ मानववाद शब्द प्रयुक्त किया गया है पर ये सभी जीवों को एक-दूसरे से जोड़कर देखता हैं। जो पिंड में है वह ब्रह्मांड में तथा जो ब्रह्मांड में है वही पिंड में। ऐसे लोक में यदि सभी शक्तियां निहित होंगी तो किसी ओर व्यवस्था की आवश्यकता ही नहीं हैं। परंतु यदि इसे आधुनिक संप्रभुता के समतुल्य माने तो यहाँ एक कठिनाई आती है वह है कि क्या जिस प्रकार आधुनिक राज्य का आधार संप्रभुता हैं जिसमे क्षेत्र का निर्धारण भी अतिआवश्यक जिसमे रहने वाली जनसंख्या में वह संप्रभुता निहित होगी, इसी प्रकार भारत में भी सभी तत्व हैं तो क्षेत्र क्या होगा, इस पर वायुपुराण का यह मंत्र जिसमे भारत के क्षेत्रफल की व्याख्या आती हैं इस बात की पुष्टि करता है कि भारत में भी क्षेत्रफल ओर उसमे रहने वाली जनसंख्या है जिसमे संप्रभुता निहित हैं। वह मंत्र हैं

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् |

वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः||[6] (2.3.1, विष्णु पुराण)

समाजवादी राज्य : समता की ओर एक सौपान

संविधान की मूल प्रस्तावना में यह शब्द नहीं था बल्कि इस शब्द को 1976 में स्वर्ण सिंह समिति की अनुशंसा द्वारा 42वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया। लेकिन इस बात में कोई दो राय नहीं है कि भारत आरंभ से ही समाजवादी राज्य रहा है। यहाँ आरंभ का अर्थ संविधान के लागू होने से नहीं है परंतु आदि काल से ही है। आधुनिक काल में समाजवादी विचारधारा को समझने हेतु यह समझा जाना चाहिए कि यह विचार प्रतिक्रिया के रूप में विश्व के सामने प्रकट हुआ। पूंजीवाद द्वारा निर्मित व्यवस्थाओं के विरुद्ध यह उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में चर्चाओं का हिस्सा यूरोपीय समाज में बनने लगा क्योंकि इस विचारधारा के विचारकों का यह मानना था कि पूंजीवाद द्वारा समाज में आर्थिक रूप से असमानता व्याप्त हुई है। जिसका कारण निजी संपत्ति एवं राज्य द्वारा व्यक्ति की स्वतंत्रता का इस हद तक संरक्षण था कि जिसके माध्यम से वह अत्यधिक लाभ पा सके। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में ही कार्ल मार्क्स ने वैज्ञानिक समाजवाद का सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसमें समाजवाद को शाश्वत नियम के रूप में मार्क्स ने स्थापित किया। भारतीय संविधान में समाजवादी सिद्धांत राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में व्याप्त हैं जो की संविधान के भाग IV अनुच्छेद 36 से 51 तक हैं। समाजवाद का ही सिद्धांत है जिसने लोक कल्याणकारी राज्य की संकल्पना को जन्म दिया। यदि लोक कल्याणकारी राज्य ही समाजवाद के ध्येय को पूर्ण करता है तो हमे ऐसे लोक कल्याणकारी राज्य के दर्शन भारतीय साहित्य कई जगह देखने को मिलेंगे। भारत में समाजवाद इतना संकीर्ण ना होकर बहुत विस्तृत है। वह किसी भी विचार के विरुद्ध नहीं जन्मा जैसा हमे यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी में देखने को मिलता है, परंतु भारत का समाजवाद तो सम्पूर्ण समाज को अपने साथ लेकर चलता है। पूरे समाज की चिंता ही भारतीय दर्शन की विशेषता है। समाज में यदि वर्णों के विभाजन को कुदृष्टि से देखा जाता है तो इस बात को जानने की अधिक आवश्यकता है कि यह भारत का वैशिष्ट्य है जिसकी वजह से भारत इतनी उन्नति को प्राप्त हुआ जिसकी कल्पना विश्व की किसी सभ्यता ने ना की थी। कार्यो का विभाजन ही वर्ण व्यवस्था का मूल हेतु था जिसके माध्यम से भारत एक कुशल समाज के रूप में विकसित हुआ। व्यवस्थाओं में कुरीतियों का आना सामान्य बात हैं परंतु इसके लिए उनमे सुधार किया जाता है ना की उन्हें पूर्णतः नष्ट किया जाता है। यदि भारत में छुआ-छूत जैसे तत्व उसके दर्शन में विद्यमान होते तो श्रेष्ठ एवं प्रथम माने जाने वाले इशावस्य उपनिषद के पहले ही मंत्र में ऋषि सभी में एक ईश्वर देखने की बात क्यों करता जब वह कहता है

ईशावास्यमिदं *सर्वं* यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[7]

यानि 'इस जगत के कण-कण में एक ही ईश्वर का वास है इसीलिए त्याग पूर्वक उपभोग करना चाहिए' जिससे सभी के जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं पूरी हो सके यह चिंतन कितने उच्च विचारों पर आधारित होगा जो ना सिर्फ मनुष्य की परंतु जीव मात्र को एक बंधन में बांधते है।

एवं यह ही नहीं किन्तु इशावस्य उपनिषद के ही छठे मंत्र में ऋषि समानता स्थापित करते हैं। जो की इस प्रकार है

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मनेवानुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥[8]

यानि 'जब हम संपूर्ण प्राणियों को ईश्वर में एवं ईश्वर के दर्शन सभी प्राणियो में करते हैं तो किसी से भी घृणा नहीं करते'। क्या इससे वैज्ञानिक प्रमाण होगा जो हमें ये सिद्ध कर दे कि हमें असमानता का व्यवहार क्यूँ त्याज्य होना चाहिए।

भारत में समाज को वर्गों में विभाजित करकर नहीं देखा जाता जिसका अर्थ यह है कि भारतीय समाज में एकात्मता है जिसे एक शरीर की तरह देखा जा सकता है जिसके विभिन्न अंग एक दूसरे पर परस्पर अवलंबित है जिसमे एक अंग को क्षति पूरे शरीर को क्षति पहुंचाएगा। इसी तरह यदि सम्पूर्ण शरीर को स्वस्थ रखना है तो हर एक अंग की चिंता करनी होगी। समाज के हर अंग की चिंता करना ही भारतीय दर्शन का लंबे समय से स्वभाव रहा है। यही सच्चे समाजवाद के दर्शन है जिसमे सम्पूर्ण समाज का विकास हो सके ना कि वह समाजवाद जो आधुनिक समय में समाज को छिन्न-भिन्न करके प्राप्त हो।

पंथनिरपेक्षता में धर्म की आवश्यकता

पंथनिरपेक्षता शब्द तो वस्तुतः 1976 में संविधान में जोड़ा गया परंतु संविधान इस मूल्य को आरंभ से अपने भीतर लेकर चल रहा है। यदि भारत के साहित्य की बात करें तो चिर-काल से भारत इस मूल्य को अपने में सँजोये हुए है। यहाँ सर्वप्रथम पंथनिरपेक्षता का अर्थ समझना अतिआवश्यक है। पंथनिरपेक्षता का अर्थ दो रूपों में देखा जाता है, सर्वप्रथम नाकारात्मक पंथनिरपेक्षता यानी जिसमे राज्य का स्वयं का कोई पंथ नहीं है तथा वह सभी पंथों को समान रूप में देखता है, अथवा सकारात्मक पंथनिरपेक्षता, जिसमे राज्य हर पंथ के संरक्षण के लिए समान प्रयास करे। इनके बीच का अंतर राज्य का पंथों के प्रति सक्रिय एवं निष्क्रिय दृष्टि से देखना है। आज भी 'सेक्युलर' शब्द का मूल अनुवाद धर्मनिरपेक्षता ही समझा जाता है, परंतु धर्म के अर्थ की व्यापकता को देखते हुए हमारे संविधान में पंथनिरपेक्षता शब्द प्रयुक्त हुआ है। यदि हम 'सेक्युलर' शब्द की ही बात करें तो भारत की परंपरा इस शब्द को भी सार्थक करती हुई दिखती है। अथर्ववेद का यह मंत्र हमे अनायास ही इस व्यवस्था के दर्शन करा देता है जब उसमें यह आया है

'जनं विभ्रति बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथ्वी यथोकसं'[9]

यहाँ इस वाक्य का अर्थ है कि 'भारत देश की धरती पर विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले एवं नाना प्रकार के धर्मो का पालन करने वाले लोग रहते है'। इस वाक्य में प्रयुक्त धर्म शब्द का अर्थ पंथ के रूप में भी लिया जा सकता है जो वस्तुतः धर्म का ही एक भाग है। यहाँ भारत के 'सेक्युलर' होने की पुष्टि हो जाती है। परंतु अगला प्रश्न जो हमारे सामने आता है वह यह है कि क्या कोई देश बिना धार्मिक जीवन को अपनाये 'सेक्युलर' हो सकता है? क्योंकि किसी भी राज्य को 'सेक्युलर' होने के लिए अपने नागरिकों के जीवन में कुछ सिद्धांतों को उतारना अपरिहार्य होगा जिनके अभाव में राज्य किसी भी मूल्य की रक्षा करने में सक्षम नहीं होगा, यह बात भी ध्यान रखने जैसी है कि वह सिद्धांत डंडे के बल पर बाहरी रूप से उड़ेले नहीं जा सकते परंतु जीवन दर्शन के माध्यम से ही जीवन का भाग बन सकते है, उसी को यहाँ धर्म कहा गया है। धर्म के यदि लक्षणों की बात की जाए तो उसमें पहला ही लक्षण 'धृति' यानी धैर्य, जिसके अभाव में विभिन्न पंथों के मानने वालों का एक साथ रहना असंभव है। अगला लक्षण 'क्षमा' पूर्व वाले की प्रतिमूर्ति ही

जान पड़ता है तथा उसकी आवश्यकता भी अपरिहार्य हो जाती है। 'अक्रोध' भी ऐसा लक्षण है जिसके अभाव में 'सेक्युलर' होना कठिन होगा। इस प्रकार यह बात कहने में कोई संकोच नहीं कि पंथनिरपेक्ष होने के लिए भी धर्म की अत्यंत आवश्यकता है। कोई भी राज्य अपने को तभी 'सेक्युलर' कह सकता है जब उस देश के नागरिक धार्मिक जीवन जीते हों एवं धर्म के लक्षणों को अपने जीवन का अभिन्न अंग मानकर चलते हों।

लोकतान्त्रिक गणराज्य: भारतीय समाज का मौलिक मूल्य

भारतीय संविधान में प्रयुक्त शब्द 'लोकतान्त्रिक गणराज्य' जीवन के उस मूल्य की ओर संकेत करता है जिसने मनुष्य जीवन के विकास में अतुलनीय योगदान सर्वथा दिया है। यदि इन दोनों शब्दों का नीर-छीर विवेक करें तो यह भारत की मूल भावना को रेखांकित करते हुए दिखती है। यद्यपि लोकतंत्र शब्द को अंग्रेजी के 'डेमोक्रेसी' का अनुवाद समझा जाता है, यह भ्रामकता है। लोकतंत्र शब्द अपने आप में बहुत विस्तृत शब्द है। परंतु इस शोध पत्र का यहाँ उद्देश्य शब्दों का अंतर प्रस्तुत करना नहीं है इसलिए इस विषय को आवश्यक होते हुए भी यहाँ छोड़ा जाना ही समीचीन है। लोकतंत्र का अर्थ 'लोक द्वारा अपने संचालन के लिए बनाया गया तंत्र है जो लोक के प्रत्येक जीव के जीवन की चिंता करे'। यद्यपि इस शब्द को हमने अपने संविधान की प्रस्तावना में अपनाया है एवं अंग्रेजी शासन व्यवस्था से लिए गए मूल्य के रूप में देखते है किन्तु इसमे कोई संशय नहीं है कि यह भारत की भावभूमि के स्पष्ट दर्शन हमें करा देता है। यह शब्द भारतीयों की जीवन पद्धति को संपूर्ण स्पष्टता के साथ हमारे सम्मुख रखता है। यही कारण भी है कि भारत को लोकतंत्र की जननी के रूप में देखा जाता है। इसके उदाहरण के रूप में वह वेदकालीन संसद है जिनके दो सदन सभा एवं समिति है जो लोक का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन सदनों में लोक के विषय में चिंतन-मनन किया जाता है एवं किस प्रकार लोक का कल्याण हो सकता है उस पर विस्तार से चर्चा भी की जाती है। आज की लोकसभा समिति की ही तरह लोकप्रिय सदन के रूप में जाना जाता है। आज की राज्यसभा को प्राचीन भारत की सभा जिसे उच्च सदन या प्रौढ़ो की सभा भी कहा जाता है, वह इसलिए क्योंकि इस सदन में अधिक उम्र वाले व्यक्तियों को स्थान प्राप्त होता था, जैसा आज राज्यसभा में भी होता है।

गणराज्य शब्द का अर्थ 'गणों द्वारा संचालित राज्य से है', परंतु आज इस शब्द को 'रीपब्लिक' के समतुल्य रखा जाता है जिससे विषय अस्पष्ट प्रतीत होता है। यदि 'रीपब्लिक' शब्द के अर्थ को समझने का प्रयास करें तो यह समझा जाता है कि यह ऐसे राज्य की संकल्पना करता है जिसका मुखिया वहाँ की जनता द्वारा चुना गया हो। महाभारत एवं भारत के अन्य साहित्य में गणराज्यों के अर्थ में कुछ विस्तार प्रतीत होता है जिसमे गणराज्य ना केवल राज्यों के प्रतिनिधित्व को दर्शाता है अथवा उसमे बहुत से राज्यों के मुखियाओ द्वारा बनी एक ऐसी सभा की बात भी की जाती है जो शक्ति संतुलन बनाकर रखेगी एवं किसी भी एक मुखिया को सर्वाधिकार प्रदान नहीं करती। काशी प्रसाद जायसवाल विस्तार से अपनी पुस्तक 'हिन्दू राजयव्यवस्था' में इन गणराज्यों पर प्रकाश डालते है। आज हमे विश्व में कई ऐसे राज्यों के दर्शन हो जाते है जिनके नाम में तो 'रीपब्लिक' है किन्तु वह सर्वाधिकारवादी शक्तियों के अधीन हैं। हमारे देश के संविधान की प्रस्तावना में जब इन दोनों शब्दों 'लोकतान्त्रिक गणराज्य' का एक साथ प्रयोग हुआ है तो यह एक ऐसे समुच्य को प्रदर्शित करता है जो कि हमे हमारे देश की शासन की संस्कृति से जोड़ता है।

न्याय: भारतीय जनमानस की चेतना का प्रतिबिंब

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय को मूल्य रूप में स्थान प्राप्त हुआ है। सामाजिक न्याय, यहाँ सामाजिक स्थितियों, सामाजिक संरचना एवं इस संरचना का सामाजिक संबंधों पर प्रभाव से संबंधित है। सामाजिक न्याय शब्द उन्नीसवीं शताब्दी में प्रचलन में आया, जैसे-जैसे यूरोप में काले-गोरे का विवाद अपने चरम पर पहुँचा वैसे-वैसे समाज के अन्य पक्षों पर भी ध्यान जाने लगा उसमे महिलाओं संबंधित अधिकार भी आ जाते हैं। भारत में जाति व्यवस्था एवं उससे जुड़ी रूढ़ियों को सामाजिक अन्याय के रूप में देखा और समझा गया। उन्नीसवीं शताब्दी में ज्योतिबा फुले एवं बीसवीं शताब्दी में डॉ अंबेडकर एवं पेरियार ने जाति प्रथा एवं उससे जन्मीं छुआछूत से संघर्ष करना अपने जीवन का ध्येय समझ लिया। संविधान में सामाजिक न्याय के लिए प्रावधान सामाजिक अन्याय को संपूर्णता से समाप्त नहीं कर सकता क्योंकि संस्थाओं के माध्यम से व्यवस्थाएँ तो बनाई जा सकती हैं किन्तु व्यक्ति का चरित्र नहीं बदला जा सकता। संस्कृत वाङ्मय में समाज के कल्याण को जन मानस में उतारा जाता था। सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिए कई मंत्र वाङ्मय में प्रयुक्त हुएं है। ईशावस्य उपनिषद में आया पहला मंत्र ही हमे इसके दर्शन करा देता है, जो इस प्रकार है

ईशावास्यमिदं *सर्वं* यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

प्रत्येक जीव में एक ही ईश्वर का वास हमे एकता के एक ऐसे बंधन में बांधता है जिससे एक-दूसरे के प्रति घृणा का भाव तो दूर बल्कि एक दूसरे की चिंता करने का स्वभाव स्वतः ही विकसित हो जाता है। यहाँ केवल मनुष्यों की बात ना होकर संपूर्ण जीव जगत के लिए इस दृष्टि का प्रयोग है। इसी श्लोक में आये 'तेन त्यक्तेन भुंजीथ' हमे त्याग पूर्वक उपभोग करने के लिए प्रेरित करता है। भारत का सम्पूर्ण साहित्य त्यागमय जीवन की बात करता है। यहीं पर आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय पर चर्चा किया जाना समीचीन है। आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय के लिए कहा जाता है कि यदि राजनैतिक न्याय मिल भी जाए पर वह आर्थिक न्याय के अभाव में हो तो उसकी कोई उपयोगिता नहीं है। भारत में किस प्रकार लोक के द्वारा शासन व्यवस्था का संचालन होता था। इसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है एवं वह संपूर्णता से राजनैतिक न्याय की ओर संकेत करता है यदि हम आर्थिक न्याय की गहनता में जाएँ उसके सूत्र भी सामाजिक संरचना में अनायास ही देखे जा सकते हैं। समाज में चार वर्ण जिसमे वैश्यों के लिए व्यापार, वाणिज्य की सुविधा है यदि ऐसा कहा जाए तो ठीक नहीं होगा, ऋग्वेद में ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि सभी वर्ग वाणिज्य, गौरक्षा, कृषि करते हैं जिससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि सभी वर्ण आर्थिक गतिविधियों में रहते थे। यदि आश्रम व्यवस्था को देखे तो उसमे गृहस्थ की समाज के प्रति एक विशेष जिम्मेदारी की गई है जिससे समाज का कल्याण हर दृष्टिकोण से हो सके। अन्य आश्रमों पर समाज को जागृत रखना एवं ज्ञान पर मीमांसा की विशेष जिम्मेदारी होने के कारण उनके जीवन की चिंता गृहस्थ के ऊपर ही आ जाती है जिससे समाज में विभिन्न मूल्यों का आदान-प्रदान हो सके। यह बताना यहाँ समीचीनी है कि इन सभी व्यवस्थाओं को जीवन का भाग बनाने में धर्म का महत्वपूर्ण योगदान है। धर्म के माध्यम से ही यह सारी व्यवस्थाएँ व्यक्ति के जीवन का अंग हो गई। ऋण-त्रयी एवं पंच

महायज्ञ जैसी व्यवस्था ना सिर्फ व्यक्ति के जीवन को सुगम बनाती है अपितु जीवन में उमंग एवं उत्साह बनाएँ रखती है एवं साथ ही साथ समाज कल्याण में महती भूमिका भी निभाती है।

निष्कर्ष

भारतीय संविधान की प्रस्तावना के विषय में यह कहा जाता है कि यह हमने अमेरिका के संविधान से प्रभावित होकर अपने संविधान में जोड़ी एवं इसमे सब कुछ उधार लिया गया है। हमने यह समझने के प्रयत्न किए कि किस प्रकार भारतीय संस्कृत वाङ्मय में कोई भी ऐसा ग्रंथ नहीं है जिसके उद्देश्य पूर्व में नहीं बताए गए हो तो भारत में यह परंपरा लंबे समय से रही है। इसी प्रकार हमने अपने संविधान की प्रस्तावना भी ग्रहण की। प्रस्तावना में वर्णित मूल्य भारतीय संस्कृति को अपने भीतर सँजोये हुए हैं। प्रस्तावना में वर्णित मूल्यों का संस्कृत वाङ्मय में प्रभावी स्थान है एवं यह समाज के भीतर उतर गए थे यह भी हमे अनायास ही देखने को मिल जाता है। इन मूल्यों की व्याख्या पूरे संस्कृत वाङ्मय में आई है आवश्यकता है तो उनके उल्लेख किए जाने की। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से उसी दिशा में एक प्रयास किया गया।

संदर्भ :

1. कश्यप, सु.(2011) हमारा संविधान, नैशनल बुक ट्रस्ट, , पृ.स.- 55
2. वही, पृ.सं.-57
3. वही, पृ.सं.-57
4. जैन, एम. पी.(2023), इंडियन कान्स्टिटुयशनल लॉ, लेक्सिस नेक्सिस, खंड-1, पृ.स.- 20
5. गैरोला, वा. (2017),कौटिलीय अर्थशास्त्रम, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, , पृ.स.-13
6. विष्णु पुराण, गीतप्रेस गौरखपुर, बुक कोड- 48, सं० २०७६ , पृ.स.-118
7. शंकरभाष्यार्थ, ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस गौरखपुर, बुक कोड- 1421, सं० २०८०, पृ.स.-25-26
8. शंकरभाष्यार्थ, ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस गौरखपुर, बुक कोड- 1421, सं० २०८०, पृ.स.-37
9. अग्रवाल, वा.(2023), भारत की मौलिक एकता, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, , पृ.स.-12

भारतीय सनातन धर्म की आधुनिक विश्व में उपादेयता

कौशल किशोर प्रजापत,
शोधार्थी,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

भारत देश धर्म प्रधान देश रहा है। यहां धर्म मानव जीवन के आचरण का अभिन्न अंग रहा है। यहां धर्म दर्शन का पर्याय रहा है, जिसने मनुष्य को यथार्थ जीवन जीने की दृष्टि प्रदान की है। वेद-उपनिषद, स्मृति, पुराण, आर्ष महाकाव्य (रामायण, महाभारत) आदि में धर्म के आचरण को शीर्ष पर रखा गया है। धर्म शब्द धृ-धारण धातु पूर्वक मनिन् प्रत्यय लगने से निष्पन्न (उत्पन्न) हुआ है। इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ है- "ध्रियतेऽनेनेति धर्मः" अर्थात् जिसका धारण किया जाए वह धर्म है। धर्म न केवल मनुष्य के सम्यक् व्यवहार, आचरण, आदर्श एवं मर्यादित कर्तव्यों से संबधित है, अपितु समाज व्यवस्था के संचालन व नियमन से भी सम्बन्धित है। "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" अर्थात् वेद धर्म के मूल हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि चारों वेद धर्म के मूल प्रमाण माने गये हैं। यह धर्म सहज और कर्त्तव्य के रूप में दो तरह का होता है। प्रथम तो वस्तुगत धर्म और द्वितीय आचरण में आने वाला। वेदों में 'धर्म' का अर्थ निश्चित नियम व्यवस्था या आचार नियम है। धर्म ऋत का पर्याय है। जिस प्रकार ऋत सार्वभौमिक सत्य होता है। वैसे ही धर्म सार्वभौमिक कर्त्तव्यपरक अनुभूति है। वह कहने मात्र की बात मतवाद अथवा युक्तिमूलक कल्पना मात्र नहीं है। "धारयति इति धर्मः" अर्थात् जो धारण करने योग्य है, वही धर्म है। पृथ्वी समस्त प्राणियों को धारण किए हुए है। जैसे हम किसी नियम, व्रत को धारण करते हैं इत्यादि। सनातन परम्परा में धर्म को जीवन को धारण करने, समझने और परिष्कृत करने की विधि बताया गया है।

महाभारत में धर्म की परिभाषा का निर्वचन किया गया है- "धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजा। यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥" किसी भी शासनतंत्र में समृद्धि और शान्ति धर्म से ही आती है। धर्म की इतनी सहज परिभाषा महाभारत के अतिरिक्त अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। प्रस्तुत शोधपत्र में धर्म के सनातन स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इसके निमित्त भारतीय सनातन संस्कृति के स्रोत वेद, स्मृति, पुराण, दर्शन, रामायण, महाभारत और गीता से उपादेय साक्ष्यश्लोकों को संक्षिप्तया प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय दर्शन में धर्म- भारत देश की सनातन परम्परा में धर्म और दर्शन अन्योन्य आश्रित रहे हैं। दर्शन वस्तुगत धर्म और आचरित किये जाने वाले धर्म दोनों की उचित व्याख्या करता है। भारतीय सनातन परम्परा में अनेक दर्शन धर्म में रूपान्तरित हो चुके है। जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि दर्शनों ने धर्म की परिणति को प्राप्त कर लिया है।

वैशेषिक दर्शन में धर्म का लक्षण वैदिक परम्परा के अनुकूल ही है। वैशेषिक सूत्र में धर्म के विषय में लिखा गया है-

यतो ऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।[1]

धर्म वह अनुशासित जीवन क्रम है, जिसमें लौकिक उन्नति (अविद्या) तथा आध्यात्मिक परमगति (विद्या) दोनों की प्राप्ति होती है। मीमांसा के अनुसार वेदविहित जो यज्ञादि कर्म है उन्हीं का विधिपूर्वक अनुष्ठान धर्म है। जैमिनि ने धर्म का जो लक्षण दिया है उसका अभिप्राय यही है कि जिसके करने की प्रेरणा (वेद आदि में) हो, वही धर्म है।[2] और मूलरूप से वेदों में विश्वमंगल की भावना निहित है।

स्मृति या धर्मशास्त्र में धर्म –

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियं आत्मनः।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥[3]

मनु ने वेद, स्मृति, साधुओं के आचार और अपनी आत्मा की तुष्टि को धर्म का साक्षात् लक्षण बताया है। वेदः स्मृतिः सदाचारः वेद, स्मृति, सत्पुरूषों का आचार च और स्वस्य आत्मनः प्रियम्, अपने आत्मा के ज्ञान से अविरूद्ध प्रियाचरण एतत् चतुर्विधं धर्मस्य लक्षणम ये चार धर्म के लक्षण हैं अर्थात् इन्हीं से धर्म लक्षित होता है। मनुष्य मात्र के लिये जो सामान्य धर्म निरूपित किया गया है। वही समाज को धारण करनेवाला है, उसके बिना समाज की रक्षा नहीं हो सकती। मनु ने कहा है कि रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है। बौद्ध शास्त्रों में इसी धर्म को शील कहा गया है।

जैन शास्त्रों ने अहिंसा को परम धर्म माना है।

मनु ने धर्म के दस लक्षण बताए हैं:-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम् ॥[4]

(धृति (धैर्य), क्षमा (दूसरों के द्वारा किए गए अपराध को माफ कर देना, क्षमाशील होना), दम (अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण करना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (आंतरिक और बाहरी शुचिता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना), धी (बुद्धिमत्ता का प्रयोग), विद्या (अधिक से अधिक ज्ञान की पिपासा), सत्य (मन, वचन और कर्म से सत्य का पालन) और अक्रोध (क्रोध न करना); ये दस धर्म के लक्षण हैं।)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने धर्म के चौदह स्थान बताये हैं- पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, षड् वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद तथा ज्योतिष), चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद), यह चौदह धर्म के साधक हैं [5]

स्मृति-न्याय ग्रन्थों को धर्मशास्त्र की संज्ञा दी गई। धर्मशास्त्र में धर्म को तीन वर्गों में बाँटा गया है-

(1) सामान्य धर्म- भगवद्गीता में 30 सामान्य धर्मों का उपदेश है, जो इस प्रकार हैं- सत्य, दया, तपस्या, पवित्रता, कष्ट सहने की क्षमता, मन का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य का पालन, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, संतोष, आत्मचिंतन, भोग त्याग, अन्न दान, सज्जन संगति, पूजा, यज्ञ, ईश् वंदना, आत्म समर्पण आदि।

(2) विशिष्ट धर्म- किसी व्यक्ति के द्वारा विशेष रूप से पालन करना, इसको स्वधर्म भी कहा जा सकता है। ये धर्म प्रत्येक व्यक्ति के आश्रम व वर्ण के अनुसार होते हैं। वर्णधर्म, आश्रम धर्म, कुलधर्म, राजधर्म, नैमित्रिकधर्म, देशधर्म ये विशिष्ट धर्म के अंतर्गत आते हैं।

(3) आपद् धर्म- आपद् धर्म का पालन सामान्य परिस्थितियों में न होकर उन विशिष्ट परिस्थितियों में करणीय है जो किसी आपत्ति या दुर्घटना के कारण उपस्थित होती हैं।

आचार्य याज्ञवल्क्य ने धर्म के षड्विध स्वरूप बताए हैं-

(1) वर्णाश्रम धर्म- प्रत्येक मनुष्य का उसके वर्ण के अनुरूप तथा आयु अनुसार आश्रम में प्रवेश करने के उपरांत नियमित कर्तव्यों का पालन करना वर्णाश्रम धर्म है। जैसे- ब्राह्मण वर्ण के लिए ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करने पर पलाश दण्ड धारण करना।

(2) आश्रम धर्म - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि आश्रम के अनुसार कर्तव्य या धर्म का पालन करना। जैसे- ब्रह्मचर्याश्रम में वेदाध्ययन, भिक्षाचरण करना आदि।

(3) वर्णधर्म- ब्राह्माणादि वर्ण के अनुसार धर्म का पालन करना। जैसे- ब्राह्मण के लिए वेदाध्ययन करना तथा मदिरापान का निषेध होना आदि।

(4) गुण धर्म- राजा के लिए अभिषेक, प्रजापालन आदि धर्म का पालन करना।

(5) निमित्त धर्म- किसी कारण से किए जाने वाले कर्तव्य। जैसे- पश्चाताप आदि

(6) साधारण धर्म- सत्य, अहिंसा, क्रोध न करना आदि। इस धर्म का पालन करना सभी मनुष्यों का मौलिक कर्तव्य है।

मन-वाणी-कर्म को नियंत्रित करते हुये कल्याण में प्रवृत्त करने का कार्य धर्म से ही संभव होता है। रामायण में प्रत्येक पात्र धर्म के साक्षात् मूर्त रूप हैं। राम का पुत्र व पति के रूप में, भरत-लक्ष्मण का भातृभाव, हनुमान की भक्ति, सीता का सतीत्व आदि कर्त्तव्यपरायणता के शीर्ष प्रतिमान हैं। श्रीराम कभी धर्म को नहीं छोड़ते और धर्म उनसे कभी अलग नहीं होता है। अत एव वाल्मीकि रामायण में " रामो विग्रहवान् धर्मः" कहा गया है। वस्तुतः इसमें कोई अतिशयोक्ति भी नहीं है।

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्व धर्मसारमिदं जगत्।। [6]

धर्म से अर्थ प्राप्त होता है और धर्म से ही सुख मिलता है। और धर्म से ही मनुष्य सर्वस्व प्राप्त कर लेता है। इस संसार में धर्म ही सार है। इसी भाव को रामायण में अन्यत्र भी कहा गया है- 'धर्माद् राज्यं धनं सौख्यमधर्माद् दुःखमेव च।" [7]

महाभारत तो साक्षात् धर्म की स्थापना और संरक्षा का महाकाव्य है।

गीता में भगवान् श्री कृष्ण की स्पष्ट घोषणा है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥[8]

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥[9]

सनातन परम्परा के 18 पुराणों में भी धर्म को परोपकार का पर्याय ही बताया गया है। 'अष्टादशपुराणानां व्यासस्य वचनद्वयं। परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

पद्मपुराण में धर्म के विषय में इस प्रकार कहा गया है- श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥[10] इसका अभिप्राय है कि धर्म के सार को सुनकर उसको धारण करना चाहिये। और जो आचरण स्वयं के प्रतिकूल हो उसे दूसरों के साथ भी व्यवहार में नहीं लाना चाहिये। इसका समर्थन महात्मा गांधी जी ने भी किया है।

लोककवि तुलसीदास जी ने धर्म को पुराणवर्णित सार की तरह ही प्रस्तुत किया है-

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥ निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर॥[11] इसका भावार्थ है- हे भाई! दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुःख पहुँचाने के समान कोई नीचता (पाप) नहीं है। हे तात! समस्त पुराणों और वेदों का यह निर्णय (निश्चित सिद्धांत) मैंने तुमसे कहा है, इस बात को पण्डित लोग जानते हैं। यह तो धर्म का कर्म पक्ष हुआ।

वाणी में धर्म सत्य के के रूप में प्रकट होता है। किन्तु उसका भी कल्याणकारी रूप ही अभीष्ट है। मनुस्मृति में सत्य की कल्याणकारी सनातन परम्परा को ही धर्म कहा गया है-

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।

प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥[12]

"अहिंसा परमो धर्मः धर्म हिंसा तथैव चः । धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः॥"[13] अर्थात् यदि अहिंसा परम धर्म है, तो धर्म हिंसा भी परम धर्म है। अहिंसा मनुष्य का परम धर्म है, और धर्म की रक्षा के लिए हिंसा करना उस से भी श्रेष्ठ है। जो धर्म की रक्षा करता है वह स्वयं रक्षित होता है||

पुरुषार्थ मनुष्य जीवन के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होता है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ हैं जिनको पुरुषार्थ चतुष्ट्य या चतुर्वर्ग भी कहा गया हैं। इसमें भौतिक (सांसारिक), धार्मिक (नैतिक) तथा आध्यात्मिक (ईश्वरीय) तत्वों आदि

का सन्निवेशन (मिश्रण) है। चारों पुरूषार्थों में धर्म को अग्रणी रखा गया है। इसका प्रमुख कारण है कि धर्म इनकी प्राप्ति में उत्प्रेरक और नियंत्रक दोनों की भूमिका निभाता है। धर्मानुकूल अर्थ और काम की प्राप्ति से ही मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बनता है। मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अर्थ और काम का अनासक्त भाव से किया गया उपभोग धर्म के ज्ञान से ही संभव है। और उस धर्म की जिज्ञासा करने वालों के लिये परम प्रमाण श्रुति ही है। [14]

आधुनिक भारत में धर्म का स्वरूप- आधुनिक समय में धर्म का जो अर्थ प्रचलित है, वह सम्प्रदाय, मत या पंथ को इंगित करता है। वर्तमान भारत में धर्म को अंग्रेजी में रिलिजन (religion) और ऊर्दू में मजहब का पर्याय मानते हैं, लेकिन यह उसी तरह सही नहीं है जिस तरह की दर्शन को फिलॉसफी कहा जाता है। दर्शन का अर्थ देखने से बढकर है। उसी तरह धर्म को समानार्थी रूप में रिलिजन या मजहब कहना हमारे भाषिक ज्ञान की अल्पज्ञता ही है। मजहब का अर्थ संप्रदाय होता है। उसी तरह रिलिजन का समानार्थी रूप विश्वास, आस्था या मत हो सकता है, लेकिन धर्म नहीं। हालांकि मत का अर्थ होता है विशिष्ट विचार। कुछ लोग इसे संप्रदाय या पंथ मानने लगे हैं, जबकि मत का अर्थ आपका किसी विषय पर विचार है। धर्म का आधुनिक स्वरूप देश, काल, पात्र के अनुरूप आचार संहिता प्रस्तुत करता है। धर्म का यह स्वरूप देश, काल और पात्र के सापेक्ष होता है। धर्म के सनातन स्वरूप की अपेक्षा ये अर्थगत रूपान्तरण सीमित और संकुचित है। जबकि धर्म के सनातन स्वरूप के अनुसार वह तो मानव मात्र के लिये मूल तत्त्व है, शाश्वत, अपरिवर्तनीय व अविनाशी है। धर्म का यह स्वरूप सार्वभौम, सार्वकालिक एवं सर्वजनीन है। इस प्रकार धर्म के वास्तविक स्वरूप को प्रकाश में लाना अत्यन्त आवश्यक है।

भारतीय संविधान में मूल अधिकारों के अन्तर्गत धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार भी अनुच्छेद 25 से लेकर 28 तक में सम्मिलित किया गया है। धर्म की स्वतंत्रता का यह अधिकार अधिकांशतः विविध समुदायों का सन्तुष्टिकरण ही करने में ही सक्षम है। यह भी विडम्बना की ही बात है कि भारतीय संविधान में अधिकारों को प्रारम्भ में ही प्रमुख स्थान दे दिया किन्तु मूल कर्त्तव्यों को अनेक वर्षों के उपरान्त संविधान में स्थान दिया गया। तथा अधिकारों की अपेक्षा और भी कमजोर स्थिति में। आधुनिक भारत के दार्शनिक और प्रथम उपराष्ट्रपति डा.राधाकृष्णन् ने धर्म को कर्त्तव्य के पर्याय के रूप में माना है। वे धर्म का अर्थ आचार ग्रहण करते है,[15] जिसका आधुनिक संकीर्ण कट्टरता से कोई सम्बन्ध नहीं है। इससे भी अधिक धर्म प्रधान देश के संविधान में धर्मनिरपेक्षता जैसे आधुनिक शब्दों को भी स्थान दे दिया गया। संविधान में वर्णित धर्म साम्प्रदायिकता को ही पोषित करता है। यद्यपि कुछ वर्षों के उपरान्त धर्मनिरपेक्षता शब्द के स्थान पर पंथनिरपेक्षता शब्द को जोडा गया। यह देश की विविधता को विकृत करता है, जिसकी एकता का शंखनाद विश्वभर में किया जाता है। आधुनिक सन्दर्भों में धर्म शब्द की नवीन व्याख्याओं ने अनेक संवेदनशील समस्याओं को जन्म दिया है। आतंकवाद, धर्मपरिवर्तन आदि समस्याओं ने भारतीय समाज को अत्यधिक क्षति पहुंचाई है। ये भारत की विश्व एक परिवार **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** जैसी पवित्र अवधारणा का हनन करते हैं। वर्तमान समय में मनुष्य ने स्वयं को भौतिकवादी भोग-विलासिता की अंधप्रवृत्ति की ओर बढा दिया है। महाभारत में दुर्योधन ने स्वयं को अधर्म के वशीभूत बताते हुये कहा है कि- " जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः। केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥"[16] अर्थात् 'मैं

धर्मको जानता हूँ, पर उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्मको भी जानता हूँ, पर उससे मेरी निवृत्ति नहीं होती। मेरे हृदयमें स्थित कोई देव है, जो मेरे से अधर्म करवाता है, वैसा ही मैं करता हूँ।' यहां दुर्योधन जिस 'देव' के अधीन होकर अधर्म का आचरण कर रहा है, वह वस्तुतः 'काम' (सांसारिक सुख-भोग और संग्रह प्रवृत्ति) ही है। इसके कारण मनुष्य विचारपूर्वक जानता हुआ भी धर्म का पालन और अधर्मका त्याग करने में समर्थ नहीं हो पाता है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, तृष्णा और ईर्ष्या के अधीन होकर मनुष्य धर्म को जानते हुये भी अधर्म में ही प्रवृत्त होता चला जाता है। और दुर्योधन की भांति अन्ततः न केवल स्वयं के विनाश अपितु परिवार, समाज और राज्य के विनाश को भी प्राप्त हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने स्वधर्म के पालन श्रेष्ठ और सर्वसाध्य बताया है और परधर्म को त्याज्य और दुष्परिणामी बताया है, जो इस प्रकार है- "श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥"[17]

मनुष्य को किसी भी स्थिति में अपने धर्म का त्याग नहीं करना चाहिये, प्रत्युत निष्काम, निर्मम और अनासक्त होकर स्वधर्म का ही पालन करना चाहिये। मनुष्य के लिये स्वधर्म का पालन स्वाभाविक है, सहज है। परधर्म से कुछ समय के लिये कल्याण की कामना की जा सकती है, किन्तु उसका अन्त भयावह होता है। इसके विपरीत स्वधर्म सांसारिक सुख-भोग के अभाव में भी अनुकर्ता को परम सन्तोष की अनुभूति कराते हुये मोक्ष प्रदान करता है। त्याग, परोपकार और प्रेम ये स्वधर्म के महत्त्वपूर्ण स्तम्भ हैं, जिनका आचरण सर्वत्र सर्वदा सर्वस्व के लिये सुखद होता है। सनातन परम्परा में श्रुति और स्मृति में उक्त धर्म के आचरण को श्रेष्ठ कहा गया है। केवल धर्म को जानना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि निरर्थक है। उसका आचरण करते हुये आत्मसात करना अत्यावश्यक है। यहां उपदेश से अधिक आचरण पर बल दिया गया है। अधिकार की अपेक्षा कर्त्तव्य को वरीयता दी गई है। हमारा कर्त्तव्य प्रधान देश आधुनिक भाषिक चिन्तन की अज्ञानता के कारण अधिकार प्रधान देश बन गया है। जबकि इस देश की सनातन परम्परा में धर्म का अनुसरण करने से ही अधिकारिता तय होती आयी है। सनातन धर्म के वास्तविक स्वरूप के पालन और आचरण ने पुरूष को महापुरूष की पदवी प्रदान की है। महात्मा गांधी का सम्पूर्ण जीवन सत्य और अहिंसा को समर्पित रहा है। विवेकानन्द जी ने भी अपने सम्पूर्ण जीवन को धर्म की वास्तविक स्थापना में लगाया था। वस्तुतः सनातन धर्म का वास्तविक स्वरूप और उसका आचरण मनुष्य को विश्वनागरिक बनाते हुये उसे विश्वकल्याण की भावना से परिपूर्ण करता है। उसमें निहित संकीर्ण सोच और कृत्यों को सनातन धर्म व्यापक उदारता से परिपूर्ण करता है। धर्म की सनातन संकल्पना व्यक्ति के दायित्वों तथा दूसरों के प्रति व्यक्तिगत कर्त्तव्यों के रूप में रही है। सनातन धर्म के पालन ही से आधुनिक विचारक **दीनदयाल उपाध्याय के एकात्मवाद मानववाद** जैसी व्यापक की अवधारणा को संस्थापित किया जा सकता है। यह आज के वैश्वीकरण के युग में अत्यन्त उपादेय और प्रासंगिक है, जिससे समस्त विश्वकल्याण के मार्ग पर प्रशस्त हो सकता है। धर्म के सार्वभौमिक और कल्याणकारी स्वरूप को समझते हुये उसे आचरण में अपनाकर हम समुचित तरीके से लाभान्वित सकते हैं।

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1. वैशेषिक सूत्र 1.1.2
2. चोदनालक्षणोऽर्थः धर्मः। मीमांसा सूत्र
3. मनुस्मृति 2.12
4. मनुस्मृति 6.91
5. पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गामिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ याज्ञवल्क्य स्मृति 2.11
6. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण 3/9/30
7. वाल्मीकि रामायण 7.15.23
8. भगवत् गीता अध्याय 4 श्लोक 7
9. भगवत् गीता अध्याय 4 श्लोक 8
10. पद्मपुराण सृष्टि खण्ड 19.357
11. रामचरितमानस 7.91
12. मनुस्मृति 138
13. महाभारत शान्तिपर्व 6.102
14. अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते। धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति॥ मनुस्मृति 2.13
15. धर्म और समाज, पृ. 123
16. महाभारत अश्वमेध पर्व 50.36
17. श्रीमद्भगवद्गीता 3.35

Search on Research-Vedas and Upanishads through a Bibliometric Analysis

Dr. Priyanka Puri
Associate Professor,
Dept. of Geography,
Miranda House,
University of Delhi, Delhi

Introduction

Indian contributions to the world in the form of Upanishads, Vedas, and the concepts mentioned in them need no specific introduction. The term Veda means 'knowledge' and in particular 'an unbroken flow of knowledge' (Muller, 2000). The Vedic texts are considered to have been delivered by God through sages to enhance human existence on the earth (Pandey, 2005 a). The word Veda is derived from the Sanskrit word 'vid', which means to 'know'. They are religious texts of Hinduism and are believed to inform about existential knowledge concerns (Doniger, 2023). Although seen as authorless, they are also believed to propagate knowledge which is 'best' in acquisition (Griffith, 2003). They are considered perpetual and divine in origin (Dalal, 2014). A Veda is a collection of ideas as hymns in the Sanskrit language in praise of gods personified as natural phenomena (Doniger, 2023).

The content in the Vedas focuses on an ultimate philosophy, and they are considered to be the oldest treatise of human philosophy. They are attempts to gather divine information about the universe, terrestrial, atmospheric, and all other secrets of the cosmos, which were delivered to the seers after deep meditation. They are supposed to be the basis of Upanishads, texts which are the basis of Indian philosophy (Parashar, 2018). Vedas are divided into parts as follows:

The Samhitas (mantras), the Aranyakas (rituals and ceremonies), the Brahamanas (commentaries on rituals), and the Upanishads (discussion on meditation and philosophical aspects). The Samhitas are the primary textual parts of the Vedas, which contain the hymns. The Brahmanas are comments on the Samhitas. They provide an explanation of Vedic hymns. The Aranyankas are the forest books, describing the way of life for ascetics living in forests

(Sehgal, 2020). The Upanishads are the end texts of the Vedas and deal with the ultimate philosophical and mystical content of the Vedas. These are taken as the essence of the Vedas. In their descriptive form in the collection, Vedas are of four categories. These are the types of Vedas: Rigveda, Yajurveda, Samveda, and Atharvaveda. The three Vedas- Rigveda, Samveda, and Yajurveda are called 'vedatrayi' or trilogy of Vedas (IGNCA, 2023).

The content and subject of the Vedas can be divided into three broad categories- Karma Kanda, Upasana Kanda, and Jnana Kanda, dealing with rituals, worship, and knowledge, respectively (Atmanism, 2015). Rigveda connotes initiation with the word 'Rig', which is derived from the Sanskrit meaning rich. It means the hymn of praise called mantras and is considered as the oldest treasury and compendium of wisdom (IGNCA, 2023). This collection (Samhita) is seen as a compilation of several works. The Rigveda Samhita is seen as a collection of hymns called 'rik' in praise of deities. Worshippers, in turn, look for favours in return for these praises. It comprises 1,028 suktas. These hymns have verses which are divided into ten mandalas or books, which have impenetrable knowledge describing the observed world, rituals, and divine world (Jamison & Brereton, 2014).

The Veda Yajurveda is derived from 'Yaj', meaning prayers to be offered in the form of 'mantras' during 'yagya'. The term 'yagya' can also be taken to denote all individual and societal activities and behaviours which are performed for the utmost benefit of human beings and society (Pandey, 2005 b.). It also describes in detail the behaviours and practices which should be followed for this purpose, and these pertain to social, political, diplomatic, religious, and economic activities. It has a total of 1,975 mantras (Pandey, 2005 b.) and is cited as the pillar of the Rigveda and the Samveda (Staal, 2008). There are two parts of this Veda- Vajasaneyi or white text, and the Taittiriya or black text. These divisions basically indicate the nature of clarity of these texts as clear or white and unclear or black (Griffith, 2003).

The Samveda is the third Vedic text. This Veda aims at synchronicity. It suggests that knowledge, actions, and worship should be with God. This synchronicity forms the base of a world-level harmony. To achieve this, one must aim at oneness with life forms, world, and god as components (Pandey, 2005 c.). It is also called the book of chants and is the shortest of all the types of Vedas. The Samans are the chants, and the Samveda is taken as the prime Veda, as Lord Krishna described in the Bhagwatgita that 'Among the Vedas, I am the Samveda' (IGNCA, 2023).

The Atharvaveda is a later version of the Vedas and is considered separate from the trinity of the three Vedas because it does not deal with the ritualistic aspect. Rather, its focus is on spells to deal with diseases, removing demons, hymns related to the forces of the universe, and hymns concerning rituals and ceremonies (Lopez, 2021). It is also considered the source of Ayurveda. It is the Veda of the 'Atharvanis' wherein 'Atharvan' indicates a priest. It also denotes a 'yogi' or a stable-minded person. It is described as the only Veda dealing with both worldly and spiritual concerns. The varied categories of 'mantras' in this Veda broadly deal with three categories: a. Curing diseases and destroying evil forces, b. Creating peaceful, healthy, wealthy, and long life, c. dealing with the ultimate reality, time, and death. It is defined as an encyclopedia of multiple subjects (IGNCA, 2023). The Upanishads are called ‘Vedantas’ or conclusions of the Vedas (NA, 2016).

The Upanishads are considered to mean the 'connect' and are one of the parts of the Vedas. The word 'Upanishad' is a derivative of the root 'Sad', meaning 'to sit'. With this, the Prefixes' Upa' and 'Ni' are added. 'Upa' means nearness, and 'Ni' is indicative of totality. Both combine to indicate 'sitting nearby devotedly' (IGNCA, 2023). These are the concluding portions of the Vedas and seek to describe the connection between humans and the cosmos, and are called 'Vedanta' or the conclusion of the Vedas. They are believed to have generated more interest than any other contexts of the Vedas (Olivelle, 2023). They are also called the 'ripe fruit' of the Vedas and form the knowledge section of the Vedas. The Upanishads are described as the most extensively read Vedic texts, indicating the goal of the Vedas. They are believed to give 'rahasya' or a secret to the learner. The Upanishads are called the end or goal of the Vedas, as they tend to explain the central theme of the Vedas (IGNCA, 2023). The aim of Vedanta is Vedic knowledge, which aims at the knowledge of the 'braman' or 'brahm vidya'. This connotes an eternal self, 'the One', or the person, or also sometimes as the sacred 'Om' (Muller, 2000). The text of the Vedas from the Upanishads can be seen from the objective to the subjective (Muller, 2000). The Brahman is also believed to be the truth and ultimate reality within us.

There is no unanimous opinion on the number of Upanishads. Some scholars suggest their number to be 200. In this regard, there are ten Upanishads which have been defined as the principal Upanishads. These are- Ken, Isha, Katha, Prashna, Mandukya, Munda, Taittiriya, Aitareya, Brihadranyaka, and Chandogya. Different Upanishads are associated with the Vedas (Swami & Yeats, 2003; IGNCA, 2023).

The current attempt is bibliometric. A bibliometric study is defined as scientific in nature, which can provide a quantitative description of data (Wang & Tian, 2021). It is defined as not only a popular but also an intense methodology of describing the gradations of research in any field. It also provides information on trends in articles, publication sources, collaborations in research, geography of research, citations, publications, and other kinds of analysis, which can also provide direction to future research (Donthu, Kumar, Mukherjee, Pandey, & Lim, 2021).

Methods and materials-

The Database for the current study is derived from the Web of Science (WoS), Scopus, and Wiley databases. The search was conducted separately for the exact terms 'Vedas' and 'Upanishads'.

The Scopus database is a unique combination of abstracts and citations and provides scholarly information for numerous disciplines. It is highlighted as the largest database of peer-reviewed work, ranging from various kinds of publications. With regards to subjects, they can be observed as science, technology, medicine, social sciences, arts, and others (Elsevier, 2023). It also has 'smart tools' to visualize the searches done.

Wiley Online is mentioned as one of the largest and 'most authoritative' collections of publications in the form of books, chapters, journals, and others. It includes publications on various disciplines covering sciences, social sciences, law, commerce, medicine, and many others (Wiley, 2023). Since 2004, WoS has been one of the two large databases providing bibliographic information on multiple disciplines. Given by Thomson Reuters, it has records from 1900 to the present. With several databases (Annie, Haralstad, & Christophersen, 2015), citation searches with diagrammatic presentations can be done through WoS (Annie, Haralstad, & Christophersen, 2015). The citation research output is in the form of indexing, citation details, journal information, authorship information, country of publication, and other bibliographic content (Ramlal, Ahmad, Kumar, Khan, & Chongtham, 2021). WoS is the most trusted global citation data provider. It has 1.9 billion cited works. The WoS Core Collection provides information on more than 115 years of the highest quality research (Clarivate, 2022). It includes three indices- The Science Citation Index expanded (SCI-EXPANDED), Social Sciences Citation Index (SSCI), and Arts and Humanities Citation Index (AHCI), with

information from 1989 to present (Clarivate, 2022). The WoS Core Collection is forwarded as a 'premier' resource of WoS, and has more than 21,100 worldwide peer-reviewed journals in more than 250 disciplines related to the sciences, social sciences, and arts and humanities. A commercial license is required to do analysis (Ramlal, Ahmad, Kumar, Khan, & Chongtham, 2021).

The focus of the current examination is to examine the research done on 'Vedas' and 'Upanishads' separately in the academic world through the Scopus, WoS, and Wiley databases, and in detailing their nature with regard to bibliometric information on publications, authorship, and others. The data generated is examined through the VOS Viewer software. It acts as a tool for generating and depicting bibliometric information by providing help in analysing networks, geographies, and mapping of bibliometric information for the data (VOS Viewer, 2022).

Analysis and Results- The following bibliometric information on the topic was generated upon research from the respective databases:

A. **Vedas-** The output on this search can be analysed as follows:

(i) Scopus database- The database provided results from the year 1865 to the present. In this, publications on the topic 'Vedas' indicated that more publications were picked from 2005 onwards, and in these publications, the University of Oxford dominated the totals, as can be seen from Fig.1. The database generated around 4,000 articles. For network analysis, around 3,500 keywords were identified in these publications.

Fig.1. Institutions with Publications on 'Vedas'

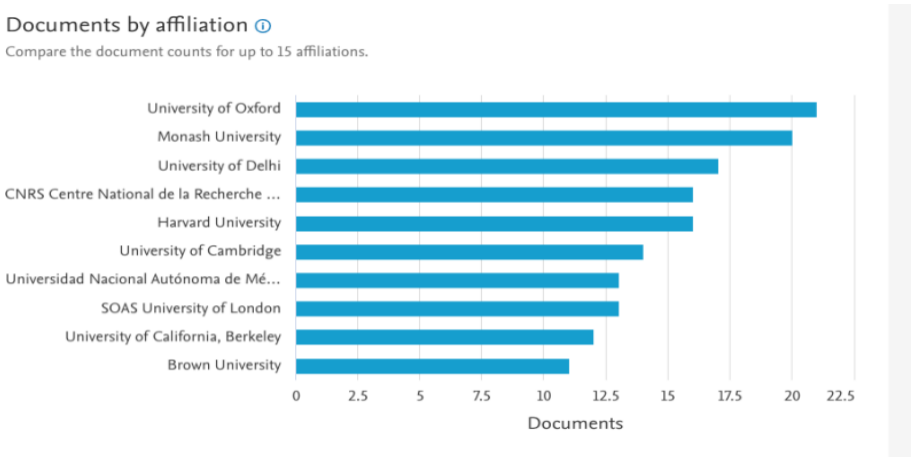

ISSN: 2583-391X

Source- Author, 2022, from Scopus database, analysed in VOS Viewer 1.6.18

It further provided information on keywords and indicated that the dominant ones in this category were 'human', 'India', 'vedas', and 'vedic mathematics' in the descending order. The other details are visible in Fig.2.

Fig.2. Keywords in Publications on Vedas

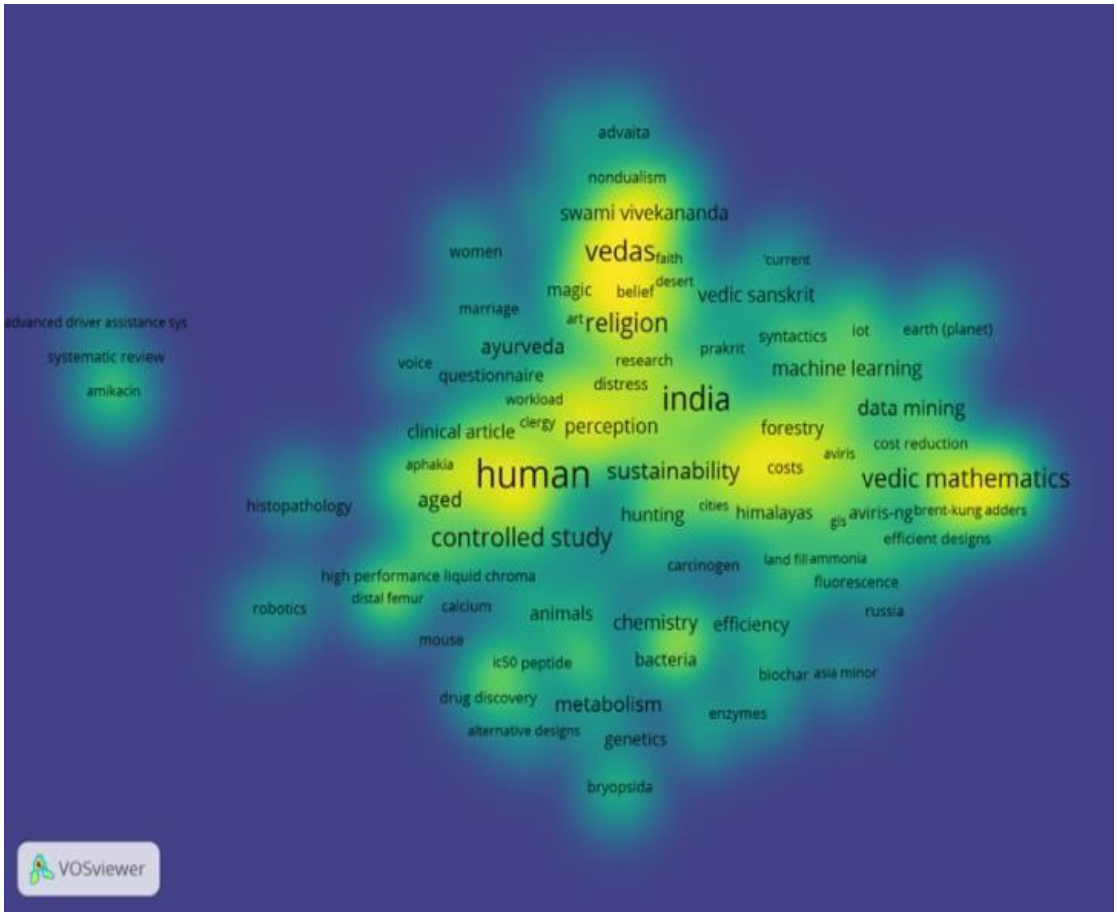

Source- Author, 2022, from Scopus database, analysed in VOS Viewer 1.6.18

In these publications, the subject area with the maximum share is Arts and Humanities, with 32% of the publications, followed by Social Sciences with 24.2%.

(ii) Web of Science (WoS)- It generated 158 results on the topic 'Vedas'. The publication themes are visible in Fig. 3.

Fig.3. WoS Publications on Topic 'Vedas'

Source- WoS database, 2023

Publication details on publishers indicated that Elsevier had the maximum publications, followed by Springer Nature, as can be seen in Fig. 4.

Fig. 4. Publishers on the topic 'Vedas'

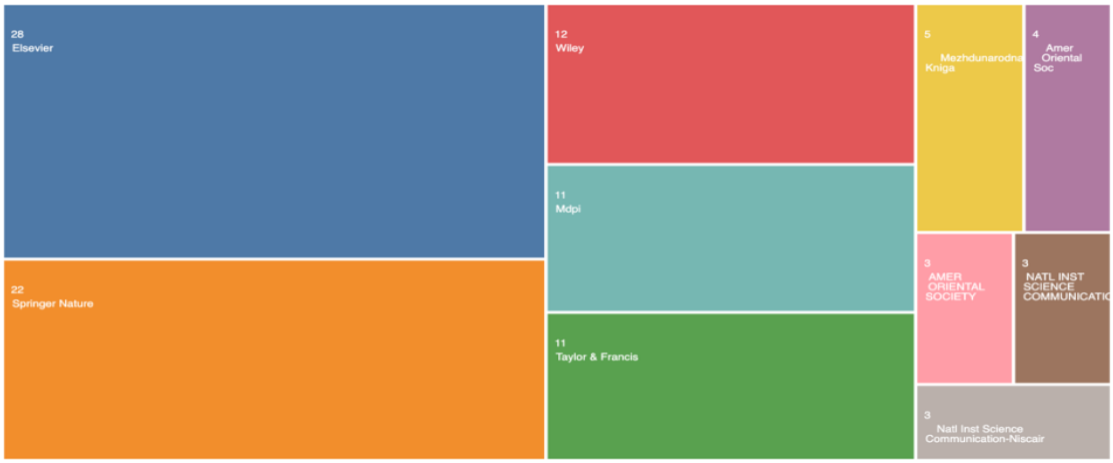

Source- WoS database, 2023

ISSN: 2583-391X

The citation report indicated that 158 articles were cited 1,106 times. Information extracted on titles and abstracts suggested that around 4,300 items were derived in which the terms had a concentration around the term 'vedas' in the publications from 2005-2020, as can be seen in Fig.5. Other terms concentrated around medicine, science, and technology.

Fig.5. Co-occurrence of keywords on the topic 'Vedas'

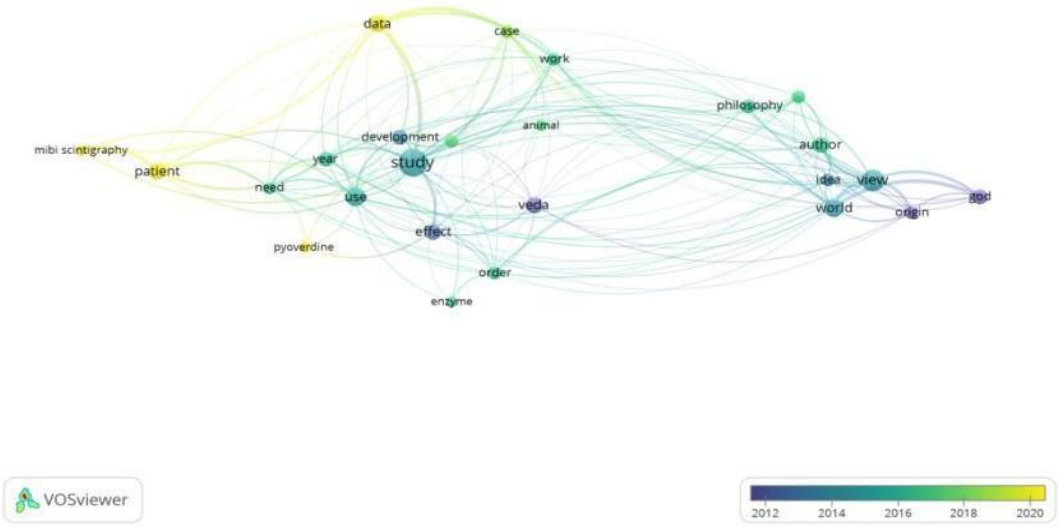

Source- Author, 2022, from WoS database, analysed in VOS Viewer 1.6.1

Fig.6. Key words in Publications on the Topic 'Vedas'

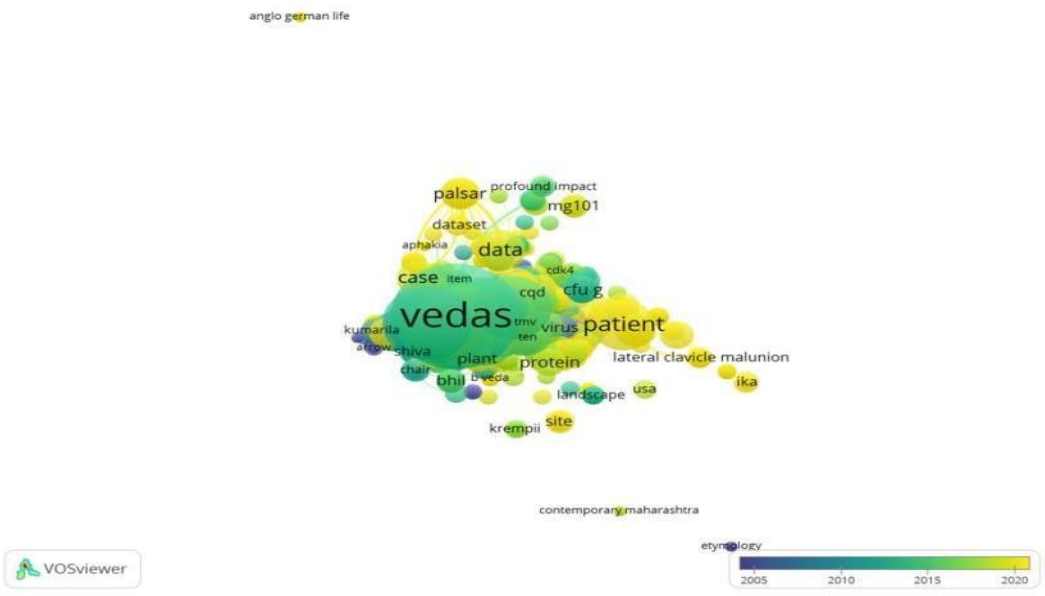

ISSN: 2583-391X

Source- Author, 2022 from WoS database, analysed in VOS Viewer 1.6.1Wiley database- In this database, a search was done to check the individual publications on the Vedas. The search revealed the following results till publications in 2023:

Table 1. Details of Publication on Vedas in Wiley Publications

Veda	No. of Publications
Rigveda	**214**
Yajurveda	**52**
Samveda	**4**
Atharvaveda	**5**

Source- Author, 2023, from the Wiley database

B. **Upanishads-** The output on this search can be analysed as follows:

(i) Scopus database- Search on the topic generated 176 documents when searched for abstract, title, and keywords. Results indicate that document publication gathered pace on the topic after 2007. Documents as per country indicated that Indian publications on the topic had the maximum share, followed by the United States, the United Kingdom, and Ukraine. Details on affiliations as per institutions indicated results, as can be seen in Fig.7.

Fig.7. Institutions with Publications on 'Upanishads'

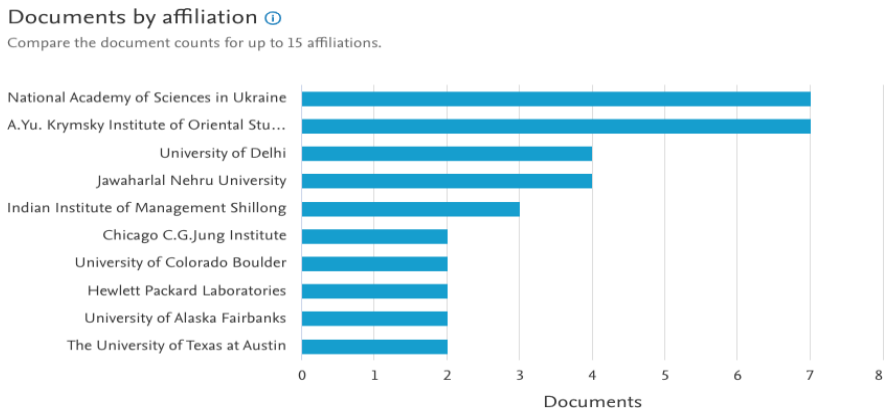

Source- Author, 2022, from Scopus database, analysed in VOS Viewer 1.6.18 In this category also, Arts and Humanities had the maximum share with 45.5% of the publications, followed by Social Sciences at 20.3%. The co-occurrence of keywords gave only three main keywords in the publications, as 'brahman' and 'human'.

ISSN: 2583-391X

(ii) WoS- Here, the results on the term 'Upanishads' indicated that works in Philosophy were the maximum, followed by Religion. The database did not provide much output in numerical terms, as only 59 publications could be outlined. These were cited 81 times. Taylor and Francis and Wiley did the most publications on the topic.

(iii) Wiley database- It generated 888 results on the topic 'Upanishads', with the International Review Mission having the maximum publications. Articles and chapters occupied the highest category of publications.

Thus, it can be seen that the works observed on the topic have significance in publications in the 20th century only. They are also not in number.

Conclusions- Thus, it can be seen that a limited number of published works are observed on the topic of 'Vedas' and 'Upanishads'. Whatever publications are observed, they are basically concentrated on the philosophical aspects of these works. Not much detailed information can be generated from the well-recognised databases with regard to the diversity of publications on these texts or topics associated with them. Since these texts are defined as unparalleled and unprecedented in their contexts in the world, more focused research can be helpful in bringing out the objectives of Indian philosophy to the world.

References-

1. Doniger, W. (2023). *https://www.britannica.com/topic/Veda*. Retrieved 2023, from https://www.britannica.com.
2. Griffith, R. T. (2003). *The Vedas With Illustrative Extracts.* The Book Tree.
3. Jamison, S. W., & Brereton, J. P. (2014). *The Rigveda- The Earliest Religious Poetry of India.* Oxford.
4. Pandey, R. B. (2005). *Rigveda.* Adarsh Printers. Parashar, S. (2018). *Religious Belief and Ethical Values of Rigveda: A Book on Rigveda.* Notion Press.
5. Pandey, R. (2005). *Yajurveda.* Diamond Pocket Books (Pvt. Ltd..).
6. Staal, F. (2008). *Discovering the Vedas.* Penguin Books.
7. Pandey, R. B. (2005). *Samveda.* Diamond Pocket Books (Pvt. Ltd..).
8. Sehgal , M. (2020). *Basic Religious Books of the Hindus.* Prabhat Prakashan.

9. Lopez, C. (2021, April). Retrieved 2023, from https://www.oxfordbibliographies.com: https://www.oxfordbibliographies.com/display/document/obo-9780195399318/obo-9780195399318-0008.xml
10. IGNCA. (2023). Retrieved 2023, from https://vedicheritage.gov.in.
11. Atmanism. (2015). Retrieved 2023, from https://atmanism.wordpress.com: https://atmanism.wordpress.com/2015/08/10/the-four-vedas-and-their-sub-divisions/
12. NA. (2016). Retrieved 2023, from https://indianscriptures.50webs.com/partveda.htm
13. Dalal, R. (2014). *The Vedas.* Penguin.
14. Annie, M., Haralstad, B., & Christophersen, E. (2015). Literature Searches and Reference Management. In P. Laake, H. B. Benestad, & B. R. Olsen, *Research in Medical and Biological Sciences From Planning and Preparation to Grant Application and Publication* (pp. 125-165). Academic Press.
15. Ramlal, A., Ahmad, S., Kumar, L., Khan, F. N., & Chongtham, R. (2021). From molecules to patients: the clinical applications of biological databases and electronic health records. In K. Raza, & N. Dey, *Translational Bioinformatics in Healthcare and Medicine, Advances in ubiquitous sensing applications for healthcare* (Vol. 13, pp. 107-125). Academic Press.
16. Clarivate. (2022). Retrieved 2022, from https://clarivate.com: https://clarivate.com/webofsciencegroup/solutions/web-of-science-core-collection/
17. VOS Viewer. (2022). Retrieved 2022, from https://www.vosviewer.com/
18. Donthu, N., Kumar, S., Mukherjee, D., Pandey, N., & Lim, W. M. (2021, Sep.). How to conduct a bibliometric analysis: An overview and guidelines. *Journal of Business Research, 133*, 285-296.
19. Elsevier. (2023). Retrieved 2023, from https://blog.scopus.com/about
20. Wiley. (2023). Retrieved 2023, from https://onlinelibrary.wiley.com/
21. Olivelle, P. (2023). Retrieved from https://www.britannica.com: https://www.britannica.com/topic/UpanishadMuller, F. M. (2000). *The Thirteen Principal Vedas.* Wordsworth Editions, Limited.
22. Swami, S. P., & Yeats, W. B. (2003). *The Ten Principal Upanishads.* Rupa & Company.

23. Wang, P. and Tian, D.(2021, Jun.). Bibliometric analysis of global scientific research on COVID-19. *Journal of Biosafety and Biosecurity*.doi: 10.1016/j.jobb.2020.12.002.

भारत की पारम्परिक सांस्कृतिक व्यवस्था और उसका वर्तमान विश्व पर प्रभाव

प्रीत पाल, शोधार्थी
हिंदी विभाग, डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय,
आगरा, उ.प्र.

विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक भारतीय संस्कृति अपने आचार-विचार एवं श्रेष्ठतम जीवन पद्धति के कारण आज भी जीवन्त बनी हुई है, जबकि विश्व की अनेक संस्कृतियाँ काल-कलवित हो गई। किसी भी मानव समुदाय की अपनी एक संस्कृति होती है, जो हजारों वर्षों के अनुभवों से प्राप्त श्रेष्ठ, परिष्कृत, सुसंस्कार ही उस मानव समुदाय की संस्कृति कहलाती है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होते रहते है। इन्हीं संस्कारों से उस मानव समुदाय का आचरण, व्यवहार व चिंतन निर्धारित होता है। संस्कृति का अनुकरण नहीं किया जाता उसे अपनाया जाता है। सभ्यता बाहरी आवरण है, तो संस्कृति अंतःकरण है। सभ्यता का संबंध खान-पान, रहन-सहन आदि बाहरी तत्वों से होता है, तो संस्कृति का संबंध आंतरिक चिंतन-मनन और विचारधारा आदि से होता है। अगर मानव शरीर को सभ्यता कहे तो उस मानव शरीर को नियंत्रित करने वाले मन, मस्तिष्क एवं आत्मा संस्कृति है। अनेक विद्वानों ने संस्कृति को इस प्रकार परिभाषित किया है-

डॉ. सम्पूर्णानन्दः- "मानव का प्रत्येक विचार, प्रत्येक कृति संस्कृति नहीं है। पर जिन कामों से किसी देश विशेष के समस्त समाज पर कोई अमिट छाप पड़े, वहीं स्थायी प्रभाव ही संस्कृति है। संस्कृति वह आधारशीला है, जिसके आश्रय से जाति, समाज व देश का विशाल भव्य प्रसाद निर्मित होता है।"[1]

रामधारी सिंह दिनकरः- "संस्कृति एक ऐसा गुण है जो हमारे जीवन में छाया हुआ है। एक आत्मिक गुण है जो मनुष्य स्वभाव में उसी तरह व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, युग-युगान्तर में होता है।"[2]

मैथ्यू आर्नोल्डः- "विश्व में जो कुछ उत्तमोत्तम कहा गया या जाना गया है उससे स्वयं को भिज्ञ करना ही संस्कृति है।"[3]

हजारी प्रसाद द्विवेदीः- "मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति है।"[4]

अतः वे सभी गुण संस्कृति है, जो मनुष्य की मानसिक, आत्मिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विशिष्टता प्रदान कर मानव को वास्तविक अर्थों में श्रेष्ठ मानव बनने के पथ पर अग्रसर करते हैं।

विश्व की विभिन्न संस्कृतियाँ एक दूसरे को प्रभावित करती रही हैं। भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण विश्व समुदाय को प्रभावित करती रही है। विश्व के अनेक देशों और उनकी संस्कृति पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। तो दूसरी ओर पश्चिम प्रेरित उपभोक्तावादी संस्कृति के दुष्प्रभाव भी भारतीय संस्कृति पर स्पष्ट रूप से देखे जा

सकते है। पश्चिमी उपभोक्तावादी संस्कृति में व्यक्ति की उन्नति का एक मात्र पैमाना आर्थिक उन्नति को माना जाता है, और अंतिम लक्ष्य अधिक से अधिक धन-संपदा प्राप्त करना। जबकि भारतीय संस्कृति में व्यक्ति की उन्नति का पैमाना आध्यात्मिक उन्नति और अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति को माना जाता है। इसी कारण पश्चिमी उपभोक्तावादी संस्कृति मनुष्य को सुविधाओं का पुतला और पैसे छापने वाली एक मशीन बनाती है, तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति मनुष्य का आत्मिक और आध्यात्मिक विकास कर उसे सही अर्थों में श्रेष्ठ मानव बनाती है।

वर्तमान समय में संपूर्ण विश्व धर्म, जाति, रंग, क्षेत्र, भाषा, आतंकवाद आदि की समस्याओं से जुझता हुआ तृतीय विश्व युद्ध के मुहाने पर खड़ा हुआ है, तो दूसरी ओर पश्चिमी देशों के व्यक्ति अपनी समाज व्यवस्था और अपनी उपभोक्तावादी संस्कृति से तंग आ चूके है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने उन्हें धन-संपदा, ऐशो-आराम तो दिया मगर उनकी आत्मिक शांति छीन ली है। वे सुविधा संपन्न होते हुए भी अपने को आत्मिक रूप से असंतुष्ट पाते है। जबकि भारत में अनेक विषमताएं होते हुए और आर्थिक अभाव के बावजूद लोग आत्मिक रूप से कहीं अधिक संतुष्ट है। आज विश्व के अनेक देश रंग, धर्म, भाषा के नाम पर अथवा दूसरों के संसाधनों पर अधिकार जमाने के लिए लड़ रहे है, तो दूसरी तरफ भारत में विभिन्न धर्मों, जातियों और विभिन्न भाषा-भाषी लोग एक परिवार के समान मिल-जुलकर रहते है। भारतीय संस्कृति की विभिन्न विशेषताओं का वर्तमान विश्व पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है-

वसुधैवकुटुम्बकम की भावना:-

वर्तमान समय में विश्व के अनेक देश एक दूसरे को विरोधी मानकर लड़ रहे हैं। एक दूसरे को नष्ट कर देने पर तुलें हुए हैं, जबकि भारतीय सनातन संस्कृति सभी देशों की सीमा, उनकी संस्कृतियों का सम्मान करते हुए भी संपूर्ण धरा को एक परिवार मानती है-

"अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैवकुटुम्बकम्।।"[5]

अर्थात- 'यह मेरा अपना है और यह नहीं है, इस तरह की गणना छोटे चित्त (संकुचित मन) वाले लोग करते हैं। उदार हृदय वाले लोगों के लिए तो संपूर्ण धरती ही परिवार है।'

इस प्रकार भारतीय संस्कृति संपूर्ण धरा के प्राणियों को एक वृहद परिवार का अंग मानती है। सह अस्तित्व को स्वीकार करती है। अगर संपूर्ण विश्व भी इस भावना को अपना ले तो अनेक वैश्विक समस्याएँ हल हो सकती है।

विश्वबंधुत्त्व और समष्टि भावना:-

भारतीय संस्कृति के मूल में ही विश्वबंधुत्त्व और समष्टि की भावना निहित है। भारतीय संस्कृति सबको साथ होकर चलने में विश्वास करती है। भारतीय संस्कृति समस्त विश्व के विकास और कल्याण की भावना रखती है। 'कामायनी' में जयशंकर प्रसाद कहते है-

"अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा,
यह एकांत स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा।"[6]

अर्थात् व्यक्तिगत स्वार्थ ही सभी समस्याओं का मूल कारण होता है। व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण ही व्यक्ति स्वयं भी दुख भोगता है और अन्यों के दुखों का कारण भी बनता है, इसलिए व्यक्ति को व्यक्तिगत कल्याण की भावना से ऊपर उठकर सर्वकल्याण की भावना की ओर अग्रसर होना चाहिए-

"औरों को हँसता देखो मनु-हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो सब को सुखी बनाओ।" [7]

अर्थात् समष्टि के कल्याण में व्यक्तिगत कल्याण भी निहित है। अतः व्यक्ति को व्यक्तिगत सुख-दुःख को छोड़कर मानव कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए उसी में उसका भी कल्याण है।

वर्तमान समय में पश्चिमी संस्कृति को अपनाने वाले युवा व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण अपने माता-पिता तक के साथ दुर्व्यवहार करने से नहीं कतराते, उन्हें केवल अपनी आर्थिक उन्नति की चिन्ता है। उसके लिए कितने भी अनैतिक कार्य करने से वे पीछे नहीं हटते, चाहे वो कार्य परिवाद, समाज, देश एवं पूरी मानवता के विरूद्ध ही क्यों न हो। इन सबका एक ही कारण नज़र आता है, वो ये कि उनके समाज, उनकी संस्कृति ने उन्हें एक से बढ़कर एक सुविधाएँ तो दी लेकिन सुसंस्कार नहीं दिए जिसका दुष्प्रभाव वो आज अपने युवाओं में देख रहे हैं। अब उन युवाओं के माता-पिता की समझ में आने लगा है कि काश हमने भी अपने बच्चों को सुसंस्कार दिए होते। अतः अब वे धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति के सद्गुणों को अपनाने लगे हैं।

कर्म की प्रधानता:-

भारतीय संस्कृति कर्म प्रधान रही है। कर्म को सर्वोच्च स्थान दिया गया है, क्योंकि बिना कर्म किए तो कुछ भी प्राप्त कर पाना संभव नहीं है। अतः भारतीय संस्कृति निस्वार्थ भाव से, फल की कामना किए बिना, सुकर्म करने पर बल देती है। 'श्रीमद्भगवदगीता' में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।"[8]

अर्थात 'तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू फल की दृष्टि से कर्म मत कर और न ही ऐसा सोच की फल की आशा के बिना कर्म क्यों करूं।'

भारतीय संस्कृति निस्वार्थ भाव से और फल की इच्छा किए बिना कर्म करने पर बल देती है, ताकि कर्म का इच्छित फल प्राप्त न होने पर निराशा न हो, अगर व्यक्ति निस्वार्थ भाव से और फल की इच्छा के बिना कर्म करेगा तो उसे कभी भी इच्छित फल प्राप्त न होने के कारण निराशा नहीं होगी। दूसरी ओर अगर फल प्राप्ति की आशा न भी हो, तो भी कर्म अवश्य ही करना चाहिए, क्योंकि बिना कर्म किए तो कोई भी फल प्राप्त नहीं हो सकता। अगर कर्म किया जाएगा तो शायद उसका सुफल प्राप्त हो। कर्म किया जाएगा तभी उसका फल भोगा जा सकता है। 'कामायनी' में जयशंकर प्रसद कहते हैं-

"कर्म का भोग, भोग का कर्म, यही जड़ का चेतन आनन्द।"[9]

अर्थात फल प्राप्ति के लिए कर्म करना आवश्यक है और प्राप्त फल का भोग करने के लिए भी कर्म आवश्यक है। इस प्रकार कर्म ही इस जड़ जीवन में चेतना का संचार कर इसे आनंद बनाता है।

वर्तमान विश्व में आज अनेक व्यक्ति ऐसे हैं, जो बिना कर्म किए ही श्रेष्ठ फल पाने की इच्छा रखते हैं। तो दूसरी ओर बहुत से व्यक्ति इच्छित फल प्राप्त न होने की आशंका के कारण, कर्म ही नहीं करना चाहते या कर्म के अनुपात में अधिक फल प्राप्त करना चाहते हैं। जिसके कारण वे सदा परेशान और दुखी रहते हैं और जीवन में कुछ भी नहीं कर पाते। ऐसे में भारतीय संस्कृति संपूर्ण विश्व को निस्वार्थ भाव से सत्कर्म करने की प्रेरणा देती है। जिससे कभी न कभी उन्हें अपने कर्म का इच्छित फल भी प्राप्त हो सकता है। अगर इच्छित फल प्राप्त नहीं हो तो भी वे कभी निराश नहीं होंगे और कर्म में पुनः प्रवृत हो सकते हैं।

समन्वयवादी दृष्टिः-

भारतीय संस्कृति समन्वयवादी संस्कृति रही है। भारत में अनेक धर्मों जातियों के लोग रहते हैं। उनके द्वारा अनेक भाषाएं बोली जाती हैं। भौगोलिक परिवेश अलग-अलग है। पर्व-त्यौहार अलग-अलग हैं। खान-पान अलग है, फिर भी सब मिल-जुलकर रहते हैं। इन सबको एक सुत्र में पिरोने का कार्य भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी दृष्टि करती है। बाह्य रूप से मतभेद होने पर भी इनमें आंतरिक रूप से एकात्मकता है।

भारत में भगवान के सगुण-साकार रूप की उपासना करने वाले भक्त भी हैं, और निर्गुण-निराकार रूप की उपासना करने वाले भक्त भी हैं। दोनों की उपासना पद्धतियों में भेद हो सकता है, किन्तु आंतरिक रूप से कोई मतभेद नहीं है। 'रामचरितमानस' में तुलसीदास कहते हैं-

"सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा।
गाँवहि मुनि पुरान बुध वेदा।।
अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत-प्रेम बस सगुन सो होई ।।"[10]

इसी प्रकार "कामायनी' में जयशंकर प्रसाद कहते हैं कि हमें अपने ज्ञान को क्रिया में उतारना चाहिएँ, तभी मन की इच्छा पूर्ण हो सकती है। तभी आनंद की प्राप्ति हो सकती है। ज्ञान, क्रिया व इच्छा में समन्वय न होना ही दुख का मूल कारण है-

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की?
एक दूसरे से न मिल सके, यह विडम्बना है जीवन की।।"[11]

आज धर्म, रंग, जाति, भाषा आदि की भिन्नता के कारण युद्ध तक की नोबत आ रही है, तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति की विविधता में एकता, समन्वयवादी दृष्टि सबको साथ लेकर चल रही है। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता संपूर्ण विश्व को अत्यधिक प्रभावित कर रही है। विश्व देख रहा है कि भारत में इतनी विविधताएँ होने पर भी सभी किस प्रकार एक सुत्र में बंधे रहते हैं। यह विविधता में एकता की शक्ति मात्र भारतीय संस्कृति में ही देखने को मिलती है। विविधता में एकता की यह भावना, यह समन्वयवादी दृष्टि विश्व समुदाय को प्रभावित करने के साथ भारतीय संस्कृति को अपनाने के लिए भी प्रोत्साहित करती है।

सर्वमंगल कामना:-

भारतीय संस्कृति सर्वमंगल की कामना करती है। जिसके कारण भारतीय संस्कृति देश-काल की सीमाओं को लांघ जाती है और संपूर्ण मानव जाति के मंगल कामना करती है। गरूड़ पुराण में कहा गया है-

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।"[12]

अर्थात- 'सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहे, सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें और किसी को भी दुःख का भागी न बनना पड़े।'

"भारतीय ऋषिचिंतन एक धर्म, एक देश की बात ही नहीं करता। वह तो संपूर्ण मानवता से भी आगे जाकर संपूर्ण प्राणी-जगत के कल्याण कामना करता है। जड़-चेतन में सर्वज्ञ ईश्वर का वास मानकर दया, करूणा, अहिंसा, सेवा आदि उदात्त मानवीय गुणों पर बल देता है। इसीलिए भारतीय संस्कृति देश काल की सीमाएं लांघ, शाश्वत मानवीय मूल्यों को अपनाकर, एक मानव-संस्कृति बन गई।" [13]

इस प्रकार भारतीय संस्कृति परहित को सर्वश्रेष्ठ धर्म और परपीड़ा को अधर्म मानती है।

योग और ध्यान:-

महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि। योग के आठ अंग बताएं हैं। इस प्रकार ध्यान भी योग का ही एक अंग है। योग और ध्यान भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। प्राचीन काल से मन, मस्तिष्क एवं शरीर को स्वस्थ और निरोगी रखने के लिए योग और ध्यान की विधियों का प्रयोग किया जाता रहा है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में जब पश्चिमी उपभोक्तावादी संस्कृति अपने चरम पर है। ऐसे वातावरण में हर कोई प्रतिस्पर्धा में एक दूसरे से आगे निकलने में लगा हुआ है। उपभोक्तावादी इस संस्कृति में आर्थिक उन्नति ही सर्वोपरि है। इस आर्थिक उन्नति ने व्यक्ति को सुविधा संपन्न तो बनाया मगर उसकी मानसिक शांति छीन कर उसे शारीरिक और मानसिक रूप से रोगी बना दिया।

विशेष रूप से पश्चिमी विकसित देशों में यह समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी है। सभी प्रकार की भौतिक सुख-सुविधाएं होने पर भी उनका मन-मस्तिष्क अशांत है। शरीर रोग ग्रस्त हो चूके हैं। उन्हें अपना जीवन निसार सा लगने लगा है। वे पैसे कमाने की मशीन मात्र बनकर रह गए हैं। जिसका समाधान उन्हें केवल भारतीय योग दर्शन और ध्यान में ही नजर आता है। जिसके कारण आज लगभग संपूर्ण विश्व ने भारतीय योग दर्शन और ध्यान को अपना लिया है और शारीरिक व मानसिक लाभ प्राप्त कर रहे हैं। अतः वर्तमान समय में योगदर्शन और ध्यान भारतीय संस्कृति के प्रचार- प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

भारतीय अध्यात्म:-

अध्यात्म का अर्थ है- अपने भीतर के चेतन तत्व को जानना। गीता के आठवें अध्याय में अपने स्वरूप अथवा जीवात्मा को अध्यात्म कहा गया है। परमं स्वभावोऽध्यात्मुच्यते। आज के समय में योग, प्राणायाम और ध्यान को ही अध्यात्म समझा जाता है। परन्तु इसे जानने के ये केवल साधन मात्र हैं। इन विधियों द्वारा अध्यात्म को जानने की सहायता दी जाती है। अध्यात्म इन सभी

विधियों से परे है, यह महाविद्या है। इसका ज्ञान होने के पश्चात और किसी विषयवस्तु को जानने की आवश्यकता नहीं होती। आत्मनियति रति अध्यात्मः अध्यात्म के द्वारा मोक्ष प्राप्ति होती है। अर्थात् इसके द्वारा जीवन और मरण के चक्र से मुक्ति मिलती है।

अतः अध्यात्म द्वारा ही व्यक्ति स्वयं के बारे में और अपने और परमात्मा के संबंध के बारे में जान सकता है। व्यक्ति अपने अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सकता है। पश्चिमी उपभोक्तावादी संस्कृति व्यक्ति का अंतिम लक्ष्य अर्थ (धन) की प्राप्ति मानती है, इसलिए उसमें मानसिक और आत्मिक शांति नहीं है। भारतीय संस्कृति, भारतीय अध्यात्म व्यक्ति का अंतिम (परम) लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति को मानता है। जिससे व्यक्ति सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त होकर, मोह-माया से निर्लिप्त होकर, आत्मिक शांति प्राप्त करते हुए मोक्ष को प्राप्त करता है। आत्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है तो व्यक्ति जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है।

सारांश

भारतीय संस्कृति एक ऐसी श्रेष्ठ और वैज्ञानिक संस्कृति है जिसने भारतीय जनमानस को सुसंस्कृत करने के साथ-साथ संपूर्ण विश्व के सामने एक आदर्श जीवन-शैली प्रस्तुत करने का महती कार्य किया है। विराट भारतीय संस्कृति का प्रभाव विश्व के एक बड़े हिस्से पर अथवा उनकी संस्कृति पर देखने को मिलता है। "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामय..." की भावना लेकर चलने वाली भारतीय संस्कृति के केन्द्र में 'मानव कल्याण' की भावना निहित है। भारतीय संस्कृति मनुष्य के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

आज के इस अर्थ (धन) प्रधान विश्व में भारतीय संस्कृति आत्मिक शांति और आनंद का मार्ग प्रशस्त करती है। आज विश्व में धन-संपदा, धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र, मत-मतांतरों, रंग आदि के नाम पर संपूर्ण विश्व में झगड़े हो रहे हैं, तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति 'समन्वय', 'सर्व धर्म समभाव' एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम' का मार्ग विश्व को दिखा रही है। भारतीय 'ध्यान' और 'योगदर्शन' मानव मात्र की मानसिक, आत्मिक व शारीरिक सुख-शांति के लिए अत्यधिक आवश्यक है। 'ध्यान' और 'योग' का महत्त्व वर्तमान भागदौड़ भरी जीवन-शैली में अत्यधिक बढ़ जाता है, इसलिए भारतीय 'ध्यान' और पतंजलि कृत भारतीय 'योग दर्शन' से अधिकांश विश्व प्रभावित होकर 'ध्यान' और 'योग' को अपना रहा है। 'योग दर्शन' के विश्व में प्रचार-प्रसार में वर्तमान समय में बाबा रामदेव भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। भारतीय 'आश्रम व्यवस्था' ने भी विश्व को एक संयमित और तार्किक जीवन-शैली अपनाने के लिए प्रेरित किया है।

"भारतीय संस्कृति प्रारंभ से ही वैश्विक रही है, क्योंकि मनुष्य ही इसके केन्द्र में रहा। इसका कर्म-प्रधान, आचरण-प्रधान स्वरूप ही इसकी शाश्वतता के लिए उत्तरदायी है। आत्म-स्वार्थ से ऊपर उठकर 'सर्वजन-सुखाय, सर्वजन- हिताय' की संदेश वाहक होकर ही यह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को अर्थ प्रदान कर सकी है, जो वर्तमान भूमंडलीकरण से बहुत आगे की चीज है- प्राचीन, सनातन, शाश्वत और दिव्य ।"[14]

अतः वर्तमान समय में विश्व के अधिकांश व्यक्ति सभी संसाधन उपलब्ध होने के बाद भी परेशान है। वह अधिक से अधिक धन, पद, प्रतिष्ठा प्राप्त करने की अंधी दौड़ में भाग रहे हैं, जिसके कारण न तो उन्हें मानसिक और आत्मिक शांति प्राप्त हो रही है, तो दूसरी ओर उनके शरीर को अनेक व्याधियों ने घेर लिया है। वे अपनी जीवन-शैली से तंग आ चुके हैं, जिसके कारण विश्व के अनेक देशों के व्यक्ति बड़ी संख्या में न केवल भारतीय संस्कृति की ओर आकर्षित हो रहे हैं अपितु भारतीय संस्कृति को अपना भी रहे हैं। भारतीय संस्कृति अपने सुसंस्कारों, जीवन मूल्यों, समन्यवादी दृष्टि, विश्व शांति, वसुधैव कुटुम्बकम की भावना, ध्यान और योगदर्शन, अध्यात्म, आश्रम व्यवस्था, सामाजिक एवं पारिवारिक व्यवस्था से विश्व का मार्गदर्शन करने का महती कार्य कर रही है।

संदर्भग्रंथ सूची :-

1. डॉ. प्रीति प्रभा गोयल, भारतीय संस्कृति, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 1,2
2. वही, पृ. 2
3. वही, पृ. 2
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृ. 69
5. Swami Vimalananda, Mahanarayan Upanishad, Sri Ramkrishna Math, Chennai, 2010.
6. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, प्रभाकर प्रकाशन, पांडव नगर, ईस्ट दिल्ली- 110092, संस्करण 2021, पृ.55
7. वही, पृ. 55
8. वेद व्यास, श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, अनुवाद व भावार्थ श्री श्रीमद् ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, जुहू, मुंबई 400049, संस्करण 1990, पृ. 92
9. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ. 25
10. तुलसीदास, रामचिरतमानस, बालकाण्ड
11. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ. 124
12. गरुड़पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2018
13. विजय विजन, भारतीय संस्कृति, श्री नटराज प्रकाशन, ए-507/12, साउथ गांवड़ी एक्सटेंशन दिल्ली-110053, प्रथम संस्करण 2005, पृ. 11
14. विजय विजन, भारतीय संस्कृति, पृ. 12

Evaluating India's Economy and Political Development through the Perspective of Capability Approach

Dr. Abhay Vikram Singh
Assistant Professor, Department of Gandhian & Peace Studies,
Mahatma Gandhi Central University, Bihar

Ms. Anchal Chauhan
Research Scholar,
Department of Political Science
C.C.S. University, Meerut

Introduction

Standard development benchmarks like economic growth and political steadiness are not sufficient ways of measuring a country's development. Macroeconomic indicators like the Gross Domestic Product or per capita income provide information on the economic welfare of the country as a whole, but give little or no information on the quality of life for people, their freedom, or their opportunities. On the other hand, Amartya Sen's Capability Approach emphasizes people's actual freedom by assessing the development of actual capabilities—the ability of individuals to do things they have reasons to want (Sen, 1999). Sen claims that the growth of economic rates, pursuing economic growth and development itself, is not the ultimate goal, but a freedom-enhancing tool to help people make the lives they want. This paper uses the capability approach to critically evaluate the economic and political liberalization in India and how good freighting has contributed to India's growth in improving freedoms and reducing inequalities. However, modern India has its share of paradoxes, and it cannot be regarded as a model developmental state since the realization of elementary liberties such as education, health, and political rights remains an exception to the rule (Drèze & Sen, 2013). The fact that economic performance does not necessarily translate into genuine human development is shown when analyzing the role of continued social injustice and spatial fragmentation that keep unfavourable economic condition attitudes from achieving entire segments of the populace (Nussbaum, 2000). That is why the use of the Capability Approach helps to reveal India's perspective of development not only through economic criteria. Sen's approach highlights the need for people's capabilities—what permits them to be agents of doing and being and being capable of doing what one has reason to value, including education, health, and being free from

discrimination (Alkire et al., 2007). India remains a country with high rates of illiteracy and high rates of child and maternal mortality. But these problems do not affect all layers of society: poor people remain poor and continue to face these problems (Banerjee, 2015). For instance, while there are numerous state and federal crusades against poverty, a large number of women, the lower castes, and rural people remain incapable of purchasing many basic commodities and services (Chatterjee, Chowdhury, Mahindra & Mahindra Limited & LAWFARM, 2004). Indian political development is equally complicated. On the one hand, the country has a rather active and developed democratic system together with a working legal framework, the purpose of which is to ensure justice and equality (Mukherji, Ganguly, & Mukherji, 2010). Meanwhile, political enfranchisement still lags, as structural problems like corruption, lack of political representation and capacity, and poor governance prevent true, structural democratic engagement. Therefore, it will be possible to clearly and unequivocally conclude that political liberties are essential in the concept of development when it is viewed through the lens of the Capability Approach. Chatterjee et al. (2004) explain that meaningful social and political engagement, voting, and justice are key enablers that have a positive impact on the ways human beings live their lives. This paper also assesses India's legal and policy measures concerning the capability deprivation of the needy groups. There are several such programs, like the National Rural Employment Guarantee Act (NREGA) and the Public Distribution System, which are mainly aimed at providing employment and procuring food grain for availability to the poor (Nussbaum 1999, United Nations Development Programme, 2020). However, the impact of such programs as a means of improving real freedoms remains mixed (Alkire, 2007), including economic status and voting rights, among others. India's HDI has also increased, but there are still large variations in health and education indicators between different areas of the country (Osmani, 2016). This paper will use several sources to understand how policies, socio-economic differences, and political enfranchisement have influenced India's growth. The Capability Approach provides a more refined assessment of these processes regarding plausible real freedoms instead of merely GNI (Sarr & Ba, 2017; Schmidt et al., 2021).

Theoretical Framework: The Capability Approach

The Capability Approach developed by Nobel laureate Amartya Sen suggests shifting from the measurement of development by gains in gross domestic product or per capita income to the improvement of an individual's freedom. The classical utilitarian indicators of development, like the gross domestic product or income status, emphasize resources and production

outcomes. However, the Capability Approach moves beyond these limitations by asking a more fundamental question: Do individuals have the real opportunity to live the lives they value? This framework is built around three key concepts: services, potentials, and operations. Functionings represent potential things that a person may consider as worthwhile, and can be doing or being in a certain state, such as being healthy, having a satisfactory living standard, or engaging in communal life. On the other hand, capabilities are the rights or freedom one possesses or gets to pursue those functions. These can be: civil, political, and social rights such as the right to education, the right to health, the right to vote, and others. Agency is key to Sen's thought-provoking ideas, as he underscores the concept of people's capacity to achieve certain goals and objectives. The agency allows people to make decisions as to how they wish to live their lives, about the various values they hold, and in this case, free from the restraints of the economic, social, or political systems (Sen, 1999). It presents a much better picture of development than solely focusing on the economic growth of any given country, since it admits that growth does not equate to the welfare of people. This is particularly so in the Indian context, where high economic growth rates have been accompanied by enduring social injustice and differential rights concerning elemental facilities such as education and health care (Drèze & Sen, 2013). India's economic development policies have largely sought the rate of GDP growth, where the capability approach gives insights into the disparities in the distribution of capabilities amongst society. For example, poor and subordinated women, rural population, and tribal people in India are still struggling to enjoy basic rights and are unable to attain the genuine freedom that could enable them to participate in the nation's economic and political life effectively (Nussbaum, 2000).

Economic Development in India: A Capability Perspective

Another argument is that the economic liberalization process started in India in 1991 has led to considerable economic growth. Still, this growth has not led to commensurate Human Development for all Indians. Amartya Sen's Capability Approach is a more suitable tool for understanding this inequality, the necessities linked to it, and opportunities as a measure of growth rather than GDP. Although noticeable progress has been made on levels such as literacy, health, and employment, a rise in inequality persists when it comes to these opportunities, with women, lower castes, and rural dwellers being left behind. This section reviews India's economic growth in light of capability deepening.

Growth vs. Human Development

In the past, since the opening up of the Indian economy in 1991, India has seen an economic growth rate of over 6-7 % per year for the past few decades. However, despite this economic growth being celebrated globally, it has not led to the growth of human capacities, especially for the deprived groups within society. Amartya Sen – again- offers a useful perspective for evaluating India's growth, since the Capability Approach, which he formulated, posits that growth itself will not occur if it is not accompanied by an increase in individuals' real freedoms and choices (Sen, 1999). Education and literacy have known a marked change in India. Over the last two decades, education has increased by 52% from 1991 to 60.1% in 2011 and 77.7% in 2022 (Banerjee, 2015). However, these improvements have been blinded by large gaps that exist across regions, genders, and caste populations. Inequality of education, rural people of India, women, and lower castes are still suffering, and the situation in Kerala and Bihar is quite different. Such imbalances protect against capability deprivation,wherein economic growth has not automatically led to adequate growth in the educational capability provision. Healthcare has also been made access-friendly with the launch of schemes such as the National Rural Health Mission (NRHM) and, more recently, Ayushman Bharat. However, even these efforts have not been sufficient to ensure that the health requirements of the burgeoning population of India are met satisfactorily. Challenges like infrastructure problems, staff paucity, and unequal distribution of health facilities, including medical services, compound inequality within a region, especially rurally (Alkire, 2015). The UNDP (2020) reveals that India is making progress in terms of life expectancy and other health indicators, but health disparities between the urban and rural populations remain large and affect the poor.

In the case of employment, the labour market in India remains dominated by an informal economy where more than 90 percent of employees and workers have no social security, no employment benefits, and no job security (Banerjee &Ghatak, 2015). The liberalization of the Indian economy has since opened up job opportunities, particularly in the urban areas, but these reforms have not undone the dynamics of the segmented employment market. Qualified women and other socially deprived sections like Dalit and Adivasi women are also virtually locked out of highly secure jobs to enhance their capabilities to build a better economic future for themselves (Chatterjee, Chowdhury, Mahindra & Mahindra Limited, & LAWFARM, 2004).

Even today, the highest level of real GDP per capita continues to reflect the deficiency of economic growth relative to human capabilities. This is true for India, especially as experienced by women and girls, which is reflected in India's HDI ranking of 131 out of 189 in the year 2020 (United Nations Development Programme, 2020). This gap indicates a need for development strategies that allow for the expansion of capabilities, especially for the post-modern growth-excluded population

Social Inequalities and Capability Deprivation

India has been experiencing steady growth in its economy; however, social inequities have become a thorny issue in the society based on caste, gender, and regionalism. These disparities are a product of India's history and existing social relations, which define the capabilities of individuals at present. The problem of caste differentiation has not been fully addressed, so the caste system significantly hinders equal development. A social hierarchy is operated in India, and the lower castes, Dalits, and Adivasis belong to the inferior class and are again discriminated against in domains like education, health care, and politics (Mukherji, Ganguly, & Mukherji, 2010). The Capability Approach developed by Sen shows that growth should not be defined by gross domestic product but by the freedom people have. As the case is in India, caste-based discrimination greatly hampers these opportunities. For example, children belonging to lower castes are less likely to go to school or do not get proper education, and hence their employment potential and social promotions are also limited in the future (Banerjee, 2015). Besides, health and medical facilities are also a privilege for most of these castes and hence increase inequality in health among the castes (Alkire, 2007). Another big hurdle to achieving development equity in India is gender disparity. Women, hence, even up to this Generation, have limited educational and health rights and employment opportunities, especially if they hail from rural areas (Nussbaum, 2000). Even though there are attempts at the political, legal, and policy levels on the balance of power between genders, including the affirmative action that sought to ensure that at least one women sit in the local parliament, the gender disparities in employment and literacy are still closely observed (Nussbaum, 1999). The continuation of patriarchal practices also restricts women's decision-making capacity and their opportunities and thus erases their capability. One major challenge that is attributed to regional disparities also provides a challenge to inclusive development. Kerala and Tamil Nadu show far better results on indicators concerning health and education than Bihar or Uttar Pradesh.

These regional disparities result in differentiated endowments according to the place of residence for people across the regions (Drèze & Sen 2013, p. 1). Very often, economic opportunities are urban-based; hence, the rural people, especially the populations within the less developed states, have poor access to education, health, and employment (Sarr & Ba, 2017). The Capability Approach shows that social injustice by caste, gender, and regional disparities still prevents a significant part of the population in India from enjoying real choices. This capability deprivation makes those groups of people disadvantaged and unable to harness the fruits of development in India, making them out of the development equation (Osmani, 2016). Addressing these inequalities is essential for creating an inclusive development strategy that enhances the real opportunities available to all citizens.

Political Development: Enhancing Capabilities through Democratic Institutions

India's political journey may have had its origin in democracy, but the country has had its share of issues like corruption, social exclusion, and regional disparities. Applying Amartya Sen's capability approach, this section assesses how democratic institutions have promoted or restricted capabilities regarding agency, participation, and political enabling. Engaging the analysis of democratic participation, rights, and politics, as well as grassroots legal activism, the goal of the analysis is to determine to what extent Indian political experience enhances people's freedoms, enfranchises democracy, and reduces domination of structural power, providing the latter with opportunities to lead meaningful lives in a democracy.

Democratic Empowerment and Political Participation

In the six and a half decades that the country has been independent from British rule, India's political systems have gradually consolidated democracy, with India becoming the largest democracy in the world. Having this in mind, it is quite visible that even today, India's political realm is concerned with corruption, violence, and social exclusion. This section therefore discusses political participation and resultant democratic rights in terms of the capability approach with specific reference to agency, governance, and civil society as analyzed by Amartya Sen. People's participation in the Indian democracy has been considered vibrant due to free and fair elections, the existence of a strong civil society, and freedom of speech and

press through which the various groups can participate in politics. But the more pertinent question is whether this level of engagement has made any difference in allowing people and giving them the capacity to shape governance. India has a pluralistic political system open to a vast measure of involvement, but most particularly the Dalits, Adivasis, and women often encounter obstructions preventing them from exercising their rights to participate in democracy (Banerjee, 2015). As Sen (1999) has rightly pointed out, freedom is not merely the libertarian freedom to participate; it is the freedom to participate effectively. In this regard, the Capability Approach also provides an opportunity to speak more categorically about the weakness of political institutions in India and their ability to promote genuine agency and political enfranchisement. Civil society, as well as social activism, has contributed significantly to the strengthening of political skills in India by providing social entities where even political capability does not exist or is dormant. For instance, the Right to Information (RTI) movement and the National Campaign for Dalit Human Rights have emerged to be effective in demanding changes, particularly on issues of transparency and accountability (Mukherji, Ganguly & Mukherji, 2010). Nevertheless, such movements, on the one hand, tend to be challenged by the existing political elite and, on the other, have mixed effects on the most vulnerable groups of the population. The Capability Approach states that to empower people, they must not only be able to participate in civil society; they must be able to transform their lives. This divergence between capability and achievement in political liberties is still one of the persistent issues in the development of democracy on Indian soil (Alkire, 2007). In India, the political institutions are more formal and pluralist, but are influenced by corruption and violence, which restrain the political institutions from promoting the capabilities of the people. Election material is often manipulated, and the whole electoral process does not offer citizens effective participation in governance. In addition, political violence, including in areas of insurgency or ethnic conflict, limits the political liberties of citizens. Schmidt, Strotmann, & Volkert (2021) established that the economic and political status of the rural areas in the country is limited, which increases voter disadvantage. Hence, although India is a democratic country that recognizes people's formal political rights, its openness jeopardizes the efforts to develop capabilities because of corruption, violence, and social exclusion.

Legal Framework and Social Justice

The Indian legal framework facilitates the safeguarding of the liberties of people, as well as the promotion of societal justice and change applicable to different categories of citizens by constitutional protections such as affirmative action for the backward classes, women's status, and anti-discriminatory plans. However, the role of these legal frameworks as agents of change for real freedom and enhanced individual capabilities is still a work in progress. Affirmative action results in SCs, STs, and OBCs having access to educational institutions, public employment, and political offices, which have helped enhance the capabilities of socially excluded people. In Nussbaum's (1999) work, he explained that affirmative action policies provide political and social capabilities that are essential for people in disadvantaged groups to have access to resources and to be treated with dignity. Nevertheless, these legal actions have been under numerous criticisms by the upper-caste groups, while their execution is partial, especially in villages. The Capability Approach in question extends the notion of legal rights beyond the mere expansion of certain rights so that people cannot exercise these rights in full measure due to social or economic restrictions. Gender rights have also improved in India; the law of the Protection of Women from Domestic Violence Act and the Sexual Harassment of Women at Workplace Act increased women's capabilities. But as Nussbaum (2000) points out, the legal rules securing gender equality are frustrated by existing social structures and an ineffective judiciary to enable women from translating legal freedom into substantive freedom. For example, women in rural areas cannot get legal remedies, and cases of either domestic violence or sexual harassment take time to be dealt with or dismissed because the judicial systems are corrupt or inefficient (Schmidt, Strotmann, & Volkert, 2021). Litigation continues to be a major problem in India, especially for those in disadvantaged society. This House of Justice is well known to be slow, with cases taking anything from years to decades to be determined. It also deters a person’s right to pursue remedies for injuries or problems that they may wish to, and it also erodes. However, corruption in the judiciary inextricably compounds inequality, given the key role played by those in a better position to corrupt the grey area and tip the scales in their favor (Chatterjee et al., 2004). The Capability Approach also recognizes that justice is central to freedom, and where people cannot exercise their rights to receive justice within a reasonable time and in a fair manner, their freedom to live the kind of life they would like is hampered (Sen, 1999).In areas of social justice, India has undergone a legal revolution, especially in the form of preferential policies or gender rights, but due to some structural problems, such as corruption, delays, or lack of legal material support, more legal changes bring

less effective results in India. In the same way that Drèze and Sen (2013) claim, there is a need for the legal entrenchment of rights and the rolling back of social and political constraints to exercising those rights. In this regard, the capability approach provides the theoretical ground for assessing how effectively this legal structure promotes real freedom and develops people's capabilities in India.

Conclusion: Evaluating India's Development

India has been making fast economic growth over the last few decades, and it has a democratic system that is adequate for political rights. But as this dissertation has shown, when seen through the Capability Approach lens, this growth and this democratization have not mapped sufficiently onto improvements in the real freedoms and capabilities of citizens. Authors agree that economic development has happened mostly for the growth of cities, the middle class, and other privileged castes and classes, and not for the SCs, STs, women, and other socially backward classes whose capacities are controlled structurally. The major barriers to the development of capabilities across many regions in India include social injustice, gender bias, and regional disparities. For example, women cannot easily obtain an education, medical care, or jobs; Dalits and other untouchables can barely penetrate the political and economic arenas. Even though theoretically, people of all origins can address the judicial and political instances, frequently they do not receive justice, and their participation is limited due to corruption and the slowness of bureaucracy. The problem of inadequate public service delivery, health care, and education in these areas means that the citizens cannot achieve their optimum potential. In response to these issues, the policy prescriptions should reflect the enhancement of human capital provision and politicization, plus the economic enfranchisement of society. Equality policies that aim at improving educational possibilities, healthcare, and legal rights of some groups of people are useful to widen capabilities. In addition, the improvement of anti-corruption activity, judicial reform, gender equality, and rural development programs is necessary to guarantee social reforms in India alongside healthy economic growth. Thus, development in India must not be defined primarily from an economic perspective; rather, it is how many people can enjoy the fact that India has been making fast economic growth over the last few decades, and it has a democratic system that is adequate for political rights. But as this dissertation has shown, when seen through the Capability Approach lens, this growth and this democratization have not mapped sufficiently onto improvements in the real freedoms and

capabilities of citizens. Authors agree that economic development has happened mostly for the growth of cities, the middle class, and other privileged castes and classes, and not for the SCs, STs, women, and other socially backward classes whose capacities are controlled structurally. The major barriers to the development of capabilities across many regions in India include social injustice, gender bias, and regional disparities. For example, women cannot easily obtain an education, medical care, or jobs; Dalits and other untouchables can barely penetrate the political and economic arenas. Even though theoretically, people of all origins can address the judicial and political institutions, frequently they do not receive justice, and their participation is limited due to corruption and the slowness of bureaucracy. The problem of inadequate public service delivery, health care, and education in these areas means that the citizens cannot achieve their optimum potential. In response to these issues, the policy prescriptions should reflect the enhancement of human capital provision and politicization, plus the economic enfranchisement of society. Equality policies that aim at improving educational possibilities, healthcare, and legal rights of some groups of people are useful to widen capabilities. In addition, the improvement of anti-corruption activity, judicial reform, gender equality, and rural development programs is necessary to guarantee social reforms in India alongside healthy economic growth. Thus, development in India must not be defined primarily from an economic perspective; rather, it is how many people can enjoy the lives they want, the lives that are fulfilling, worthy, and non-deprived, and in which inequalities are minimized.

References:

1. Alkire, S., Oxford Poverty & Human Development Initiative, & Chronic Poverty Research Centre. (2007). Choosing dimensions: the capability approach and multidimensional poverty. *CPRC Working Paper 88* [Report]. Chronic Poverty Research Centre. https://www.files.ethz.ch/isn/127875/WP88_Alkire.pdf
2. An ESRC Research Group, Clark, D. A., & Global Poverty Research Group. (2005). *The Capability Approach: its development, critiques and recent advances* (GPRG-WPS-032). Global Poverty Research Group. http://www.gprg.org/
3. An Uncertain Glory: India and its Contradictions on JSTOR. (2013). *www.jstor.org*. https://www.jstor.org/stable/j.ctt32bcbm
4. Banerjee, M. M. (2015). Applying Sen's Capability Approach to Understand Work and Income among Poor People in India. *The Journal of Sociology & Social Welfare*, *42*(3).

https://doi.org/10.15453/0191-5096.3921

5. Chatterjee, P., Chowdhury, S., Mahindra & Mahindra Limited, & LAWFARM. (2004). A CAPABILITIES APPROACH TO ACCESS TO JUSTICE. *JOURNAL OF INDIAN LAW AND SOCIETY* (Vol. 4, Issue Winter, pp. 107–109). https://docs.manupatra.in/newsline/articles/Upload/D45FFBEF-F961-40DD-B3E7-447F746BF574.pdf
6. *Development as Freedom*. (n.d.). Google Books. https://books.google.co.in/books/about/Development_as_Freedom.html?id=NQs75PEa618C&redir_e sc=y
7. Nussbaum, M. (1999). Women and equality: The capabilities approach. *International Labour Review* (Vol. 1999, Issue No. 3, pp. 2–9). International Labour Organization. https://library.fes.de/libalt/journals/swetsfulltext/17160674.pdf
8. Nussbaum, M. C. (2000). *Women and Human Development*. https://doi.org/10.1017/cbo9780511841286
9. Osmani, S. R. & 2016 Human Development Report Office. (n.d.). The Capability Approach and Human Development: Some Reflections. In *2016 UNDP Human Development Report*. https://hdr.undp.org/system/files/documents/osmanitemplate.pdf
10. Sabina Alkire. (2015). The Capability Approach and Well-Being Measurement for Public Policy. *OPHI Working Paper* (Vol. 94) [Report]. Oxford Poverty and Human Development Initiative (OPHI). https://ophi.org.uk/sites/default/files/OPHIWP094.pdf
11. Sarr, F., & Ba, M. (2017). The Capability Approach and Evaluation of the Well-Being in Senegal: An Operationalization with the Structural Equations Models. *Modern Economy*, *08*(01), 90–110. https://doi.org/10.4236/me.2017.81007
12. Schmidt, M., Strotmann, H., & Volkert, J. (2021). Female and Male Community-Level Empowerment: Capability Approach-Based Findings for Rural India. *European Journal of Development Research*, *34*(2), 754–784. https://doi.org/10.1057/s41287-021-00373-5
13. Unit, D. I., Transforming Rural India Foundation, & Sambodhi Research and Communications Private Limited. (2021). State of health in Rural India. *State of Health in Rural India Survey*. https://www.trif.in/wp-content/uploads/2024/05/State-of-health-in-Rural-India.pdf
14. United Nations. (2020, December 15). *Human Development Report 2020*. Human Development Reports. https://hdr.undp.org/content/human-development-report-2020

अंतर्दृष्टि

ISSN: 2583-391X

■■■

मूल्यशिक्षायाः पाठ्यक्रमः

संदीप कुमार शर्मा,
विद्यावरिधि छात्र,
केन्द्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

राष्ट्रीय-मूल्यानि

'मूल्यम्' इत्यनेन तात्पर्यं तानि सर्वाणि वस्तूनि विचारैः वा अस्ति यानि वयं चयनं कुर्मः, यानि पुरस्कृतानि, प्रशंसनीयानि समाजसम्मतानि च भवन्ति, अपेक्षितम् आनन्दं सन्तोषं च ददति। यथार्थरूपे, कस्यापि जनस्य मूल्यानि तस्य व्यवहारस्य पूर्वनिर्धारकाः मापकाः च वक्तुं शक्यन्ते। तानि तस्य व्यवहारमेव न प्रेरयन्ति, तस्य नियन्त्रणं मार्गदर्शनं चापि कुर्वन्ति। एवं मूल्यं शाश्वतवस्तुरूपे अस्ति यत् जने वस्तौ वा अन्तर्निहितं भवति। मूल्यस्य आधारः विश्वासः भवति । मूल्यम् अस्माकं व्यवहारस्य व्याख्यां करोति, अस्माकं प्राथमिकतया च सम्बन्धितः अस्ति। अनेन अस्माकं चयनप्रक्रिया प्रभाविता भवति वयं च स्वस्य प्रत्यक्षीकरणस्य अनुरूपं विभिन्नक्रियाणां चयनं कुर्मः। यानि मूल्यानि मानवस्य व्यक्तित्वस्य सामाजिक-नैतिकसौन्दर्यगतानि आध्यात्मिकविकासेन च प्रत्यक्षरूपेण सम्बद्धाः भवन्ति अस्माकं सांस्कृतिकपरम्परायाः च अभिन्नाङ्गाः भवन्ति। एतादृशेषु मूल्येषु उल्लेखनीयानि मूल्यानि सन्ति - स्वातन्त्र्यम्, समता, बन्धुत्वम्, जनतन्त्रम्, समाजवादः धर्मनिरपेक्षता च, राष्ट्रियसमायोजनं, लैङ्गिक समानता, पर्यावरणसंरक्षणम्, सांस्कृतिपरम्पराणां प्रति निष्ठा, परिवारनियोजनम्, श्रमस्य महत्त्वम्, शान्तिपूर्ण सहजीवनम्, अन्तर्राष्ट्रीयसहकारः, वैज्ञानिकदृष्टिकोण: श्रेष्ठतायाः च निरन्तरम् अन्वेषणम् इत्यादयः।

मूल्यपरक-शिक्षायाः क्षेत्रम्

यदा वयं मूल्यपरकशिक्षाविषये वदामः तदा अस्माकम् अभिप्रेत्यपाठ्यक्रमे अन्यं नूतनं विषयं योजयितुमावश्यकता नास्ति, अपितु समुचितमूल्यानां, मनोवृत्तीनां, भावनानां व्यवहारपद्धतेः च शिक्षायाः क्षेत्रे व्यवस्थितविकासमाध्यमेन भवति। अतः मूल्यशिक्षायाः कार्यक्रमं सामान्यशिक्षायाः पाठ्यक्रमस्य भिन्नम् एकं न ज्ञेयम्, अन्यथा बालकाः एवम् अनुभवितुं शक्नुवन्ति यत् अन्यविषये मूल्यशिक्षा दातुं न शक्यते। अभिप्रायोऽयमस्ति यत् शिक्षा निर्माणार्थं भवितव्या, केवलं ज्ञानार्थं, प्रशिक्षणार्थ, तथ्यानां च सूचनामात्रार्थमेव न। यथार्थरूपे, निर्माणार्थं शिक्षा सा अस्ति या बालकस्य व्यक्तित्वस्य पक्षत्रयम् - ज्ञानम्, अनुभवम्, कर्मम् च यथोचितरूपेण संस्पर्श कुर्यात् अर्थात् किशोरावस्थायां बालक-बालिकाः उचित मूल्यैः, सम्यग्भावनाभिः, सद्विचारैः कार्यैः च अवश्यं सूचयितव्यम्। अपि च कश्चित् एकः सद्गुणः तेषु अभ्यासरूपेण अनिवार्यतः विकसितः कर्त्तव्यः यथा - स्वच्छता, समयेन कार्यम्, सत्यवदनम्, वृद्धानां प्रति आदरः शिष्टाचारः च, परोपकारस्य भावना, विनम्रता, राष्ट्रप्रेमः इत्यादयः। मूल्यानि तार्किकरूपेण अवगन्तुं

शिक्षयितुं च कार्यं तावत्कालं यावत् त्यक्तुं स्थातव्यम्, यावत् बालक-बालिकाः कमपि तथ्यं प्रकरणं वा तार्किकरूपेण अवगन्तुं अभिरुचेः आत्मसन्तुष्टेः च मुद्रायाः अनुभूतिं न दातुं आरभन्ति। एवं प्रकारेण मूल्यपरक शिक्षा बालकस्य मनोवैज्ञानिकसज्जया अनुभवेन च संलग्ना भवेत्। मूल्यानां सन्दर्भे कोठारी आयोगः (१९६४-६६) कथयति यत्- "पाठ्यचर्यायां एका गम्भीरा त्रुटिः अयम् अस्ति यत् अस्यां सामाजिक-नैतिक-आध्यात्मिकमूल्यानां शिक्षाव्यवस्था न कृता। अस्माकं अनुशंसा अस्ति यत् यत्र कुत्रापि सम्भवति, प्रमुखधर्माणां नीतिलक्ष्यानां साहाय्येन सामाजिक-नैतिक- आध्यात्मिकमूल्यानां शिक्षा दातुं सचेतनः सङ्गठितं प्रयत्नं करणीयम् यतोहि जीवनमूल्यानि एकप्रकारस्य स्थायिप्रत्ययाः भवन्ति। प्रारम्भे एकवारं येषां मूल्यानां बीजं छात्रे रोप्यते, अनन्तरं तेषां परिवर्तनं कठिनं भवति।"

मूल्यशिक्षायाः स्रोताः

पूवनिर्धारितविषयाणां पाठ्यक्रमे अस्माकं महत्त्वपूर्ण, जीवनमूल्यानां वृहद्रसञ्चयः गुप्तरूपेण भवति। केवलं तान् विविधविषयान् पाठनसमये पाठ्यसहगामिक्रियादयः वा सञ्चालनसमये मूल्यान् प्रति ध्यानाकर्षणकरणस्य तेषामभिज्ञानस्य तेषां च स्वशिक्षणप्रक्रियायाः अभिन्नम् अङ्ग कल्पयन् तेषां सम्बोधं प्रदानस्य आवश्यकता वर्तते। उदाहरणार्थं विज्ञाने स्वतन्त्रान्वेषणम्, सत्यं प्रति निष्ठा गणिते च तार्किकानां विचाराणां विन्यासः संक्षिप्तीकरणस्य च उत्कृष्टमूल्यानि अन्तर्निहितानि सन्ति। भाषां साहित्यं च पठनेन छात्रेषु उत्तमवृत्तयः अभिवृत्तयः च विकसिताः भवन्ति, अवकाशकालस्य समयस्य सदुपयोगस्य, उपयुक्तशब्दानां शैलीनां च अनुप्रयोगसामर्थ्यस्य स्वतःस्फूर्तविकासः सम्भवति। सामाजिकविषयाणां अध्ययनेन भारतस्य समृद्धसांस्कृतिकपरम्परायाः ज्ञानम्, जीवनस्तरः, पारस्परिकसहयोगादिमाध्यमेन सम्बन्धितमूल्यानां बोधः भवति।

पाठ्यक्रमस्य औपचारिकता

स्वतन्त्रतायाः अनन्तरं अस्माकं कार्यशैली इयमस्ति यत् यत्र यत्र वयं असफलाः तत्र-तत्र वयं स्वकीयं असाफल्यं आवर्तयितुं तत्सम्बन्धिविषयं बालकानां पाठ्यक्रमे समावेशस्य विषये उक्त्वा अवकाशः प्राप्यते। भारतसर्वकारस्य विविधमन्त्रालयान् शिक्षामन्त्रालयं च निर्देशोऽयं दीयते यत् निश्चितं विषयं बालकानां पाठ्यक्रमे समावेशितव्यम् यथा- वनसंरक्षणम् (यद्यपि वनकर्तनस्य अनुबन्धाः दत्ताः सन्ति), विधि-विज्ञानम्, पर्यावरणविज्ञानम् (यद्यपि नगराणां मलं नगरपालिकाभिः नगरविकासन्यासैः च करसङ्ग्रहणं कृत्वा अपि जलनिष्कासनस्य सम्यक् प्रबन्धनेन दूरं न क्रियते), परिवारनियोजनम् (यद्यपि समाजस्य दरिद्रवर्गस्य प्रौढान् अस्य कृते अनुनयितुं न शक्तवन्तः) इत्यादयः। इतोऽपि गम्भीरा वार्ता इयमस्ति यत् अस्माकं देशे याः सर्वाः मूल्यव्यवस्थाः विद्यन्ते, तासां मूलोच्छेदनं प्रगतिशीलविचारधारायां शिक्षां सामाजिकपरिवर्तनस्य मुख्यसंस्थां कर्तुं बलं दीयते। तस्याः स्थाने काऽपि एतादृशी वार्ता न दृश्यते यां उत्तमप्रतिफलस्य उत्पादकत्वेन मन्तव्यम्। परिवर्तनमात्रस्य एव एकः उद्घोषः अभवत्, परिवर्तनस्य परिणामः शुभः दुष्टः

वा इति न अवगम्य। परिणामः अयमस्ति यत् युवाशक्तेः अपारधारा अदिशायां विकीर्णः भूत्वा उर्वरक्षेत्राणां स्थितानि सस्यानि अपि प्रक्षालयति।

एतादृशे निराशायां केचनजनाः ये भारतीयसंस्कृतेः भक्ताः सन्ति, प्राचीनभारतस्य मूल्यमीमांसां पुरतः स्थाप्य प्रगतेः आह्वानं कुर्वन्ति। "पुरातनसंस्कृतिः" अद्य एकं उद्घोषं अभवत्, यस्य परिभाषा - दानमपि महदुष्करं कार्यं वर्तते, अस्मिन् च विचारसम्मेलनेषु बृहत् प्रख्यातविद्वांसः अपि अस्पष्टसमर्थक- वक्तव्यं दत्त्वा विषयस्य समाप्तिं कुर्वन्ति। परन्तु यदि तेभ्यः कञ्चित् एकं विद्यालयं दत्त्वा पृष्टं भवति यत् ते ३, ५, ७ वा १० वर्षेषु किमपि कर्तुं शक्नुवन्ति वा इति तर्हि विषयः समाप्तः भवति।

पाठ्यक्रमनिर्माणात् पूर्वं मूल्यानि

मूल्यशिक्षायाः एव न, सम्पूर्णशिक्षायाः मूलधाराः समाजः अस्ति यस्यान्तर्गते परिवारः, मार्गः, विप्पणिः, सर्वकारीय कार्यालयाः, कृषिकोष्ठादयः सर्वे आगच्छन्ति। विद्यालयः अस्याः मूलधारायाः 'नहर' मात्रमस्ति, यस्य जले केचन विशेषसंस्काराः अस्मात् कारणात् दीयन्ते यत् क्षेत्रेषु गमनपूर्वं जलस्य प्रदूषितपदार्थाः पृथक् करणीयाः, तस्मिन् च केचन पोषकपदार्थाः योजनीयाः। बालकस्य उपरि विद्यालयस्य सृजनात्मकः प्रभावः अतीव न्यूनः, सूचनात्मकः प्रभावः च अत्यधिकः भवति इति अवगन्तुम् आवश्यकता, अस्माकं पाठ्यक्रमस्य विडम्बना एव। अस्माकं केचन 'विद्याविमूढाः शिक्षाशास्त्रिणः' ज्ञानस्फोटनस्य चाकचिक्ये विस्मिताः अभवन्, शिक्षायां च 'ज्ञानस्य' पुटाः (ये अद्यतनभाषायां 'कैप्सूल्' इति एतेषां 'मॉड्यूल्' इति एतेषां च सङ्कुलमिति उच्यते) बालकानां शिरसि वहन्ति। परिणामोऽयमस्ति यत् अभ्यासानां मनोवृत्तीनां च सृजनात्मककार्यक्रमाणां कृते स्थानं न भवति। अन्यः विषयोऽयमस्ति यत् एतत् कार्यं कर्तुं न कश्चित् 'भृत्यम्' इति नियोक्तुं शक्यते। तथापि, नियोजिव्यक्तेः सद्भावनाम् उद्दीपयित्वा सत्कार्यं कर्तुं शक्यते, यद्यपि तस्य उपरि स्थिताः अधिकारिणः अपि नैतिकव्यवहारं कुर्युः। परन्तु तस्य कृते पाठ्यक्रमस्य निर्माणं असङ्गतमस्ति।

तथापि, मूल्यशिक्षायाः मूलः, समाजः वर्तते। यदि समाजः (यस्य विविधअङ्गानां उल्लेखः उपरि अभवत्) नैतिकरूपेण व्यवहरति तर्हि विद्यालयः स्वकीयं कार्यं उत्तमरूपेण कर्तुं शक्नोति, अन्यथा विद्यालयाः स्वस्तरे न्यूनातिन्यूनं किञ्चित् कार्यं तु कुर्वन्ति एव, यत् इतोऽपि उत्तमं कर्तुं शक्यते, तत्र संशयः न भवितुमर्हति। स्पष्टतया अवगन्तव्यं यत् केवलं छात्राणां कृते मूल्यशिक्षायाः निर्धारणेन बहुलाभः न भविष्यति। प्रौढसमाजेन सञ्चालितकार्यक्रमेषु युवानः सह नीत्वा चलनमेव लाभप्रदं भविष्यति 'न्यूनं च वदन् अधिकं च करणम्' इति एतत् सिद्धान्तं व्यवहारे स्थापनीयम्।

अद्यत्वे समाजः सर्वकारः च भ्रान्तान् जनान् लोभयितुं अनुबन्धनं करोति यथा - अवैधरूपेण भूमिं अतिक्रमणं कुर्वतां किञ्चित् दण्डं गृहीत्वा तेषां अतिक्रमणान् वैधं कृत्वा, सज्जनाः च 'किमर्थम्' इति अस्मिन् एव तिष्ठन्ति स्म तथा च रेलयानं गम्यते स्म, तथा च नोदनमुष्टिं च कृत्वा चिटिकां ग्रहणकर्तारः रेलयाने उत्तमं स्थानं गृह्णन्ति। अस्मिन् समये शिक्षायाः मूलधारायां शोषणात्मकाः

प्रतिस्पर्धात्मकाः च तत्त्वानि सन्ति वादविवादस्पर्धायाः माध्यमेन च बालकान् सत्यं प्रति सम्मानस्य स्थाने परिष्कारेण स्वपक्षं सुदृढं कर्तुं प्रशिक्षणं दीयते। एतादृश्यां परिस्थितौ मूल्यशिक्षा सफला न भवितुमर्हति। हैजा-प्रकोपस्य विस्तारस्य कारणानि निर्वाहयित्वा सुदृढं च कृत्वा चिकित्सालयस्य उद्घाटनं देशेन सह क्रीडनम् इव अस्ति।

पाठ्यवस्तु

शिक्षा देशस्य मेरुदण्डः अस्ति। यथा विकृतमेरुदण्डेन एकः जनः स्वस्थः इति वक्तुं न शक्यते, तथैव विकृतशिक्षाव्यवस्थया देशस्य निर्माणं कर्तुं न शक्यते। वर्तमान-विश्वसमाजस्य स्थितिं दृष्ट्वा इति वक्तुं न दोषः यत् अद्यतनशिक्षाव्यवस्थायां निश्चितरूपेण काचित् अन्यः वा अभावः अस्ति। स्वदेशं पश्यामः चेत् ज्ञास्यामः यत् राष्ट्रिय-नैतिकचरित्रस्य अभावः सर्वत्र दृश्यते। अधिकांशजनाः कथं अधिकतमं धनं अर्जयितुं शक्नुमः इति अस्मिन् चक्रे गृह्यन्ते। इति किमर्थम् ? अस्य मूलकारणमस्ति - शिक्षायां मूल्यशिक्षायाः अभावः। शिक्षायां मूल्यपुटस्य उपस्थित्या मानवः जगतः वास्तविकं ज्ञानं प्राप्नोति, सः स्वजीवनस्य परमं प्रयोजनं जानाति । तस्मिन् उत्तमवृत्तीनां निर्माणं भवति। समाजात् अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचारः, शोषणम्, पापाचारः, पक्षपातः इत्यादीनि दुष्टानि दूरीकृतानि भवन्ति। समाजे सुखशान्तेः राज्यं स्थापितं भवति। मनुष्य-मनुष्यस्य च भेदं समाप्तः भवति। व्यक्तौ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इत्यस्य भावनाया विकासः भवति। जगत् रक्तपातात् विग्रहात् च उद्धारं प्राप्नोति। शिक्षायां नैतिकतायाः सारः एव तं पशुतः पुरुषं कृत्वा दिव्यतां प्रति प्रवर्तयति। शिक्षायां नीतिविषये प्रश्नः उत्पद्यते यत् नैतिकतायाःमानकं न भवति। यत् कार्य एकस्मिन् स्थाने नैतिकं मन्यते, तत् अन्यस्मिन् स्थाने जघन्यं मन्यते। इयं काऽपि समस्या नास्ति। यदा प्रकृत्या जगतः सर्वे मनुष्याः समानरूपेण कृताः, तेषां जीवनस्य परमम् उद्देश्यमपि समानं भवति, तदा तस्य उद्देश्यस्य साधने मौलिकभेदस्य व्याप्तिः एव नास्ति। आहार-निद्रा-भय- मिथुनादिषु पशवः मनुष्याः च समानाः सन्ति। केवलं मूल्यबोधः एव मनुष्येषु विशेषः भवति। अतः मूल्यविहीनः मनुष्यः पशु इव अस्ति। एतां समस्यां दृष्ट्वा ज्ञायते यत् शिक्षायां मूल्यं स्थानं अवश्यं दातव्यम्। अधुना प्रश्नः अस्ति- एतत् पाठ्यक्रमे कथं स्थापयितव्यम् इति? अस्मिन् विषये प्रश्नद्वयं उत्पद्यते - (१) विषयत्वेन मूल्यस्य अध्ययनम्, (२) मूल्यव्यवहारस्य विकासः। यद्यपि इतिहासः, भूगोलः, गणितम्, विज्ञानम् च इव वयं मूल्यस्य अध्ययनं विषयत्वेन न अपि कर्तुं शक्नुमः, परं शिक्षाद्वारा मूल्योन्मुखव्यवहारस्य विकासः अवश्यं करणीयः। कथम्? शिक्षायाः मुख्यतया त्रयः वर्गाः सन्ति, तस्मिन् मूल्यशिक्षां कथं स्थानं दातव्यम् ?

प्राथमिक शिक्षा

वस्तुतः मूल्यशिक्षायाः बीजं प्राथमिकशिक्षास्तरात् एव रोपणीयम्, परं इयं अनियमितरूपेण दातव्यम्। मूल्यविकासः केवलं उपदेशमात्रेण न कर्तुं शक्यते। अस्य कृते अस्माभिः परिवारे, विद्यालये, समाजे च वातावरणं निर्मातव्यम्। बालके अनुकरणस्य प्रवृत्तिः भवति। मातापितरः शिक्षकाः च परामर्शं कृत्वा तेभ्यः सम्यक् नैतिकं वातावरणं दातव्यम्। अस्यामेव अवस्थायां बालके निम्नगुणाः विकसितव्याः।

ईश्वरे विश्वासः – ईश्वरस्य ज्ञानं अस्मान्, तान् लघु-लघु कथाः श्रावयित्वा, यत् कथं सः अस्माकं दुःखे साहाय्यं करोति, ऋषीणां साधुनां च जीवनवृत्तान्तं पाठयित्वा, साधुपुरुषाणां नाटकानि, चलचित्राणि दर्शयित्वा, नैतिकतापूर्णानि गीतानि प्रार्थनासभायां गीत्वा गायित्वा च कारणीयम्।

साहसम् अध्यापकानां प्रश्नानां साहसेन उत्तरं दातुं प्रोत्साहनम्। बाह्यपाठ्येतरसांस्कृतिकक्रियासु भागं गृहीत्वा। कस्यापि त्रुटिकरणे तं आदरपूर्वकं सूचयितुं अभ्यासं कारयित्वा। अन्धकारात्, प्रेतेभ्यः, कीटेभ्यः पशुभ्यश्च भयं न उत्पादनीयम्। संकटग्रस्तानां जनानां साहाय्यं कर्तुं प्रेरणम्। स्वशङ्कान् कक्षायां प्रस्तुतीकरणम्। असफलतां प्राप्य अपि निरुत्साहं न भवितव्यम्। सम्यक् वस्तूनां प्रदर्शनं अविचलितं प्रदर्शनीयम्, त्रुटिं कुर्वन्तु परन्तु शान्ततया दण्डं स्वीकुर्वन्तु।

स्वच्छता स्वच्छतायाः अभ्यासः करणीयः। शुभाशुभवृत्तीनां कः प्रभावः भवति - तत्सम्बद्धाः कथाः श्रावयतु। समये-समये तेषां भौतिकनिरीक्षणं, तेषां वेषस्य, व्यक्तिगतसम्पत्याः च निरीक्षणं कृत्वा पुरस्कारवितरणं करणीयम्। कक्षायाः तस्याः बहिःस्थानानां च स्वच्छतायै तेषां सहयोगं गृह्यताम्। भ्रमणे नीत्वा वातावरणस्य स्वच्छतायाः पाठस्य पाठनम्, मलिनप्रभावस्य च परिचयं कारणीयम्।

स्वच्छतायाः चलचित्रं दर्शनीयम्। अध्यापकैः स्वच्छतायाः महत्त्वं दातव्यम्। अध्यापकैः अभिभावकैः च स्वयमेव स्वच्छं भूत्वा स्वस्य उदाहरणं प्रस्तोतव्यम्।

नियमितता – पङ्क्तौ प्रार्थनाभवनं आगन्तव्यमृ, पङ्क्तौ एव ततः कक्षां गन्तव्यम्। कक्षायां सम्यक् उपवेष्टव्यम्। कक्षायां वस्तूनि क्रमेण स्थापयन्तु। नियमानुसारं विद्यालयस्य गणवेषं धारयन्तु। पङ्क्तौ स्थित्वा स्वकीयक्रमस्य प्रतीक्षां कुर्वन्तु। समयेन कक्षां आगच्छन्तु।

ज्येष्ठानां प्रति आदरः ज्येष्ठाः यदा आगच्छन्ति तदा उत्तिष्ठन्तु। तैः सह विनयपूर्वकं वार्तालापं कुर्वन्तु। वृद्धान् अभिवादयन्तु। मातापितृणां शिक्षकाणां च कार्ये साहाय्यं कुर्वन्तु। ज्येष्ठानां सम्भाषणे स्वस्य पादं न योजयन्तु।

समाजस्य आवश्यकतानां प्रति जागरूकता विद्यालयस्य सामाजिककार्यक्रमेषु भागं गृह्णन्तु। समये - समये सामाजिक-राष्ट्रियकार्येषु धनस्य श्रमस्य वा दानं ददतु। जनस्थलानां स्वच्छतां कुर्वन्तु।

न्यायः विद्यार्थिनामेव न्यायालयाः भवन्तु। परस्परमतभेदे तेषामेव निर्णयस्य अवसरः दातव्यः। न्यायाधारितकथाः पठन्तु।

सत्येन प्रीतिः - विषयं अतिशयोक्तिरूपेण न, वास्तविकरूपेण एव स्थापयन्तु। स्वत्रुटिं साक्षात्कुर्वन्तु। स्वधनस्य गणनं स्थापयन्तु। दुष्करेऽपि सत्यं मा निवर्तस्व। सत्यवादिमहापुरुषाणां जीवनवृत्तं पठन्तु, राजाहरिश्चन्द्रादिकथा। पृष्ठतः कस्यापि विषये दुष्टं मा वदन्तु। मातापितरौ, अध्यापकाः यथा स्वयं सत्यं उक्त्वा स्वकीयं उदाहरणं स्थापयन्तु।

अन्येषां सम्पत्तेः आदरः अन्येषां वस्तुं आज्ञां विना न गृह्णातु, न च तस्य प्रयोगं कुर्वन्तु । कस्यचिदपि वस्तुं यदि भवन्तः पश्यन्ति तर्हि तत् सम्बन्धितसंस्थायां निक्षेपयन्तु। एवं करणे छात्राय सम्मानं दातव्यम्।

अन्येषां अहितं न करणीयम् - पशवः - खगाः, जन्तवः कस्यापि जीवस्य हानिं न कुर्वन्तु। ये प्राणिषु दयां कुर्वन्ति तेषां कथां पठन्तु। प्राणिमात्रेषु क्रूरव्यवहारं करणे तेषां निरुत्साहः कर्तव्यः।

प्रेमः – मित्राणां, बन्धुजनानाम्, आचार्याणां च सर्वेषां जीवानां प्रति प्रेम्णा व्यवहारं कर्तुं, निर्धनानाम्, अपङ्गानाम् आवश्यकतावशानां च साहाय्यं कर्तुं तेषां प्रोत्साहनं करणीयम्। प्राथमिकस्तरस्य विद्यार्थिनां कृते पाठ्यक्रमनिर्माणसमये एतासु क्रियासु विशेषमहत्त्वं दातव्यम्। अध्यापकः अभिभावकः च प्रयत्नशीलः भवेताम्, यतोहि अस्मिन् स्तरे नैतिकतायाः बीजं सरलतया रोपयितुं शक्यते।

माध्यमिक शिक्षा

नैतिकतायाः विकासाय अत्र पाठ्यक्रमे पक्षद्वयं द्रष्टव्यम् (१) विभिन्नक्रियाकलापेषु विद्यार्थिनां सहभागिता, यथा- विद्यालये घण्टावादनम्, प्रार्थनासभायाः आयोजनम्, नियमितरूपेण कक्षायां उपस्थितिः, विद्यालये एककक्षातः अन्यतमं कक्षां पङ्क्तौ गमनम्, विद्यालयसमाप्तौ पङ्क्तिबद्धः भूय कक्षात्यजनम्, द्वयोः चक्रयोः मध्ये कक्षायां अनुशासनस्य स्थापनम्, कक्षा तस्य परिसरं च स्वच्छं करणीयम्, पेयजलस्य स्थानं शौचालयं च स्वच्छं करणीयम्, मातापितरौ अभिभावकः च यदा आगच्छन्ति तदा तेभ्यः आदरं दातव्यम्। (२) एतस्य कृते अस्माभिः अभ्यासः, क्रीडा, सङ्गीतम्, नाटकम्, चित्रकला, स्काउट्, गाइड्, रेडक्रॉस्, एनसीसी, विभिन्नविषयाणां क्लबानां सङ्गठनान्, विश्व - इतिहासस्य प्रमुखदिवसाः आचरितव्याः ।

सन्दर्भ-ग्रन्थाः

सियाराम यादव : पाठ्यक्रम, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
पाण्डेय एवं मिश्र : मूल्य शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
शकुन्तला पाण्ड्या : जीवन मूल्य, राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर।
नत्थूलाल गुप्त : मूल्यपरक शिक्षण सिद्धान्त, प्रयोग एवं प्रविधि, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर।

डी.एस. रावत : शिक्षा सिद्धान्त की रूपरेखा, रस्तोगी पब्लिकेशन, आगरा।

गैड एवं शर्मा : शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त, राम प्रसाद एण्ड सन्स, आगरा।

साहित्य परिचय का पाठ्यक्रम विशेषांक।

वैश्विक स्वास्थय, मानसिक संतोष एवं आनंद की अनुभूति के लिए भारतीय आध्यात्म की आवश्यकता

प्रज्ञा माहेश्वरी

आध्यात्म का अर्थ - अध्यात्म एक ऐसा शब्द है जिसे परिभाषित करना कठिन है। अध्यात्म ईश्वर या ब्रह्म चर्चा से अलग है। सरल शब्दों में आध्यात्म का अर्थ 'स्वयं को जनना' है। आध्यात्म हमें उस स्थिति तक पहुंचाता है जहाँ से हम खुद को सही से जान सकें और स्वीकार कर सकें। क्योंकि जानना और मानना दोनों अलग अलग बातें हैं। जानते हम सभी बहुत कुछ हैं बस मानने के लिए खुद को अलग तरह से तैयार करना पड़ता है जैसे- हमारी कमियां, विशेषताएँ, जिज्ञासाएं, किसी विषय या वास्तु आदि की भिज्ञता या अनभिज्ञता आदि। अन्य शब्दों में कहूं तो 'मैं जनता हूँ से लेकर मैं जानना चाहता हूँ का सहर्ष और आनंदपूर्ण किया गया सफर ही आध्यात्म है'। जीवन के अनुभव को भौतिकता के दायरे से बहार ले जाने का प्रयास आध्यात्म है। आध्यात्मिक होने का अर्थ है कि आप अपने अनुभव के धरातल पर जानते हैं कि मैं स्वयं ही अपने आनंद का स्रोत हूं कोई या कुछ और नहीं। आध्यात्मिकता मंदिर, मस्जिद या चर्च में नहीं बल्कि आपके अंदर ही घटित हो सकती है। यह कोई मान्यता नहीं है, यह एक जीवंत अनुभव है। यह एक कला है जैसे कि चिंतन, ध्यान या योग। जिसका स्थान प्रत्येक स्थिति में सदैव से सर्वोपरि रहा है। वैदिक संस्कृति से लेकर जैन, बौद्ध, पारसी, सिख, इस्लाम आदि सभी का मत इस विषय पर सामान रहा है बस व्याख्या अलग अलग प्रकार से की गयी हैं। अर्थात यह जीवन को समझने और जीने की कला है।

अध्यात्म का कार्य - सुख तीन तरह के होते हैं- शारीरिक, मानसिक और आत्मिक । शारीरिक सुख की तृप्ति के बाद मानसिक सुख और फिर आत्मिक सुख की तृप्ति की आवश्यकता होती है। आध्यात्म आत्मिक सुख को प्राप्त करने का मार्ग है। आध्यात्म के द्वारा मनुष्य साधारण से असाधारण बनने तक का सफर तय करता है। इसी के द्वारा मनुष्य अपने समस्त अवगुणों को दूर करने और गुणों को विकसित करने का अभ्यास करता है। आध्यात्म अन्तर्दृष्टि का विकास करता है। इसमें आत्मा और मस्तिष्क की पूर्ण शिक्षा निहित है। अध्यात्म हमें जिज्ञासु बनता है। हमें वो दृष्टि प्रदान करता है जहाँ हम भौतिक संसार से परे अलग दुनिया देख पाते हैं। जहाँ अभिज्ञ को जानने की प्रकृति का विकास होता है। यह हमें आत्मशक्ति से भरने का कार्य करता है जहाँ सिर्फ सकारात्मकता और ऊर्जा होती है। यह हमारे अंदर छुपी हुई उस शक्ति को प्रकट करता है जो हमें कभी भी किसी भी परिस्थिति में हारने नहीं देती। यह शरीर के साथ आत्मा और मन को भी अंदर से हील करने का काम करता है। जब हम अध्यात्म के मार्ग पर अग्रसर होते हैं तो मानसिक संतोष, मानवता, सेवा, सहजता, प्रेम, दया, प्रसन्नता, बंधुत्व व चिंतन आदि सगुण स्वतः ही उत्पन्न होने लगते हैं। और

जब ये सब गुण हमारे अंदर विकसित होते हैं तभी हम 'वसुधैव कुटुंबकम' जैसी भारतीय संस्कृति को सही अर्थों में चरितार्थ करने में सक्षम होते हैं।

संसार में रहकर सांसारिक उपलब्धियों के पीछे भागना मनुष्य का स्वभाव है लेकिन इनके हासिल ना होने से या मिलने के बाद खो जाने से जो दुःख और तकलीफ का अनुभव होता है वह हम पर मानसिक रूप से प्रतिकूल प्रभाव डालता है। और इससे हमारे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। स्वस्थ मन-मस्तिष्क ही स्वस्थ शरीर की कुंजी है यह तो हम सभी जानते हैं। मानसिक शांति जो कि अध्यात्म हमें देता है हमें सैकड़ों रोगों से बचाती है। अध्यात्म ही वह ज्ञान है जो लालसा और महत्वाकांक्षा के बीच का अंतर समझा कर मनुष्य को लालसा व लोभ के स्थान पर महत्वाकांक्षी होना सिखाता है। क्योंकि हम वो सब जानने के लिए उत्सुक रहते हैं जो भी हम नहीं जानते। अतः शायद ही कोई ऐसी अभौतिक वस्तु हो जो अध्यात्म से प्राप्त नहीं कि जा सकती। अध्यात्म हमारे जीवन को एक बेहतर अर्थ देता है।

वर्तमान समय में आध्यात्म की प्रसांगिकता- आज वैश्विक स्तर पायी जाने वाली सर्व प्रमुख मानवीय समस्या में मानसिक अशांति, तनाव अथवा stress मुख्य है। भागदौड़ भरी ज़िन्दगी और स्वयं के लिए ही समय का अभाव आज की जीवन शैली के मुख्य अंग बन गए हैं। वस्तुतः जिस भी वस्तुए व्यक्ति या लक्ष्य के लिए ये भागदौड़ हो रही है, उसकी प्राप्ति के बाद भी जीवन में संतोष या आनंद नहीं मिलता। बस ये भौतिक प्राप्ति क्षण भर की ख़ुशी दे पाते हैं। उस क्षण भर की ख़ुशी के बाद हम पुनः किसी ना किसी बात या विषय को लेकर चिंतित रहते हैं। यही हमारी जीवन शैली बन गयी है।

अगर हम स्वास्थ्य की बात करते हैं तो अक्सर देखा जाता है कि स्वस्थ मन-मस्तिष्क ही स्वस्थ शरीर की कुंजी है। जितनी बीमारियाँ या रोग आज सारे विश्व में फैले हुए हैं उनमें अधिकांशतः मानसिक तनाव के कारण होते हैं। आस पास ऐसे बहुत से उदाहरण आज हमारे सामने हैं जैसे- कम उम्र में ही युवाओं को हार्ट स्ट्रोक के कारण असमय मृत्यु का सामना करना पड़ रहा है। आज पूरे विश्व में लाखों लोग डिप्रेशन का शिकार हैं, जो सर्वप्रमुख वैश्विक स्वास्थय समस्या बन चुकी है। ना केवल युवा और बड़े लोग इसका शिकार हैं बल्कि आज बच्चे इसकी चपेट में सबसे ज्यादा आने लगे हैं। डिप्रेशन के कारण आत्महत्या बहुत ही सामान्य बात हो गयी है। इनसे बचने के लिए मानसिक शक्ति का होना बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। अध्यात्म किसी व्यक्ति को जीवन को लेकर एक नया नजरिया देता है। यह मन और शरीर में स्वस्थ आदतों को बढ़ावा देता है। अध्यात्म आपको मानसिक और भावनात्मक शांति देता है। अध्यात्म व्यक्ति के विकास पर केंद्रित होता है। यह किसी भी व्यक्ति को खुद को अपनाना सिखाता है, जिससे व्यक्ति खुद की कद्र करना सीखता है। इससे मानसिक स्वास्थ्य बेहतर होता है। मानसिक शक्ति अनेकों रोग से हमें बचाती है। और इस मानसिक शक्ति के लिए हमें अध्यात्म की आवश्यकता है।

आज हम सभी तृतीय विश्वयुद्ध के मुहाने पर खड़े हैं जिससे किसी भी प्रकार किसी का भी भला होने वाला नहीं है। लेकिन यह स्थिति जहाँ एक ओर राजनीतिक या सामरिक कारणों से है वही दूसरी ओर मानसिक विकारों का भी एक लक्षण कहना शायद अनुचित नहीं होगा। क्योंकि जिस कार्य से हर तरफ सिर्फ और सिर्फ तबाही और बर्बादी ही हो वह किसी भी प्रकार से बुद्धिमत्तापूर्ण तो कहा नहीं जा सकता। यहाँ मन में प्रश्न आता है कि क्या आध्यात्म में किसी युद्ध को रोकने की क्षमता है? लेकिन यहाँ ये जान पाना अधिक आवश्यक है कि जहाँ आध्यात्म कि भावना आ जाती है वहां युद्ध का विचार भी मस्तिष्क में आना कठिन हो जाता है। इसका अर्थ यह बिलकुल नहीं लगाना चाहिए कि आध्यात्म संतोषी होना सिखाता है, संतोष तो हमें सीमित करता है। आध्यात्म विनाश के स्थान पर निर्माण की ओर अग्रसर करता है, यह जिज्ञासु और महत्वकांक्षी प्रवित्ति को पुष्ट करता है। अध्यात्म नकारात्मकता को खत्म करता है, प्रेम को बढ़ाता है और एक दूसरे को अधिक करीब लाता है।

आज विश्व को यदि सर्वाधिक किसी चीज़ की आवश्यकता है तो वह है मानसिक संतोष। जो पैसों से नहीं ख़रीदा जा सकता और गरीब से लेकर संपन्न व्यक्ति तक सभी को इसकी आवश्यकता है। आध्यात्म एक ऐसी कला या विधा है जो मानसिक संतोष और प्रसन्नता से हमारे जीवन को परिपूर्ण कर देती है। आध्यात्म बुद्धि को खुला और अधिक सक्रिय बनता है। आध्यात्म के मार्ग में जीवन का हर उतार चढ़ाव ए ख़ुशी या कष्ट जीवन का एक अभिन्न भाग लगने लगते हैं और इनसे हमें बहुत अधिक अंतर महसूस नहीं होता और हम अपने कर्म के मार्ग से विचलित हुए बिना निरंतर बिना रुके आगे बढ़ते रहते हैं। और जैसे जैसे हम आगे बढ़ते जाते हैं वैसे वैसे आध्यात्म का मार्ग पुष्ट होता जाता है।

निष्कर्ष - आध्यात्म के मार्ग में आगे बढ़ने पर ख़ुशी का स्थान प्रसन्नता ले लेती है। क्योंकि ख़ुशी क्षणिक और बाहरी वस्तुओं व परिस्थितियों पर निर्भर होती है। जबकि प्रसन्नता किसी बाहरी विषय या वस्तु पर निर्भर नहीं होती, यह एक अंतःक्रिया है जो हमें अंदर से खुश रखती है। यही आनंद के रूप में परिलक्षित होने लगता है। आनंद की अनुभूति होने के पश्चात् ही हम ख़ुशी और प्रसन्नता का अंतर समझ पाते हैं। यही वो अंतर है जिसका अध्यात्म ज्ञान करता है। अंग्रेजी में कहा जाता है nothing is permanent लेकिन अध्यात्म वो सार है जो प्रसन्नता को जीवन में परमानेंट अर्थात स्थायी कर देता है।

इस परिप्रेक्ष्य में ये कहना बिलकुल भी अनुचित नहीं होगा कि अध्यात्म किसी धर्म विशेष से सम्बंधित न होकर भारतीय संस्कृति से सम्बंधित रहा है और साथ ही भारतीय आध्यात्म कोई विषय नहीं अपितु एक जीवन शैली है। यह जीवन जीने का सार है। आध्यात्म हमारी संस्कृति की परंपरागत विरासत है। जिसे जानने के लिए आज पूरे विश्व से चाहे वो जुकरबर्ग हो या अनगिनत विदेशी पर्यटक जो इस जीने की कला को जानने और सीखने भारत भ्रमण के लिए आते हैं और न केवल मन में भारत को बसा जाते हैं बल्कि दुनिया को अतुलनीय भारत के बारे में बताते हैं। जो उनके प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित है। आध्यात्म सब प्रकार से सभी प्राणियों के हित का विषय है। अतः वर्तमान समय को देखते हुए मनुष्य के लिए इस भारतीय आध्यात्मिक जीवन शैली से अधिक उपयोगी शायद ही कुछ और हो सकता है।

The Emergence of Hindutwa in 21st Century

Anup Kumar Mahto
Freelance Writer

About 400 years ago, one popular Bhakti poet of Maharashtra, who was also known for his knowledge of the Quran and Hadiths, Eknath, was on his way home after taking a bath in the Godavari River. A notorious Muslim, after chewing a pan spat on him. Eknath, without uttering a single word, went back to the river and took his bath. He again encountered the same Muslim who, it seems, was waiting for freshly bathed Eknath's arrival only to spit on him. These acts of spitting and bathing went on for a while. A crowd gathered to see who would win this 'contest'. Though in the end, the Muslim gave up spitting and withdrew shamefacedly. This story reflects the image of Hinduism as it was prevalent for centuries in this part of the world. It is undoubtedly the best way to change someone's mind, but practically only saints can do this; not any normal man.

Great Freedom fighter Veer Vinayak Damodar Savarkar openly opposed this concept of Hinduism and said that it would tarnish the image of Hinduism and gradually convert it into a timid race; that's why he supported the idea of Hindutva in 1921-22. Predominantly, he is considered the father of Hindutva. Still, the concept of this term was first created in 1892 by Chandranath Basu (1844-1910), who coined the term in his book Hindutva – *'Hindu Prakrit Itihaas'*. He used the term Hindutva, which translates to "Hindu-ness in masculine form", to denote the religious dominance of the neo-Sanskritised Hindu people. The term 'Hindutva' comes in many distinct forms:

(A) Hindu nationalism is a political ideology that asserts that the Bhartiya national identity and culture are inseparable from Hinduism.
(B) It indicates five essential elements of India's socio-cultural life- first faith in pluralism as a core value for human evolution; second, nation as a deity, Mother Goddess, a superior identity; third, harmonious balance between matter and idea which leads to unity between living and non-living things; fourth, quest for egalitarianism; and fifth, defusing Semitic impact on national life which attempts to deculturize the Hindu minds.

ISSN: 2583-391X

(C) As per Encyclopaedia Britannica, "*Hindutva as an ideology must be understood as distinct from Hinduism as a religion - not all adherents of Hinduism subscribe to Hindutva—and Savarkar's original definition asserts Hindutva as an ethnic category and eschews a specific religious connotation. In current practice, the ideology tends to be strongly pro-Hindu and staunchly anti-Muslim. However, supporters often define Hindutva in purely cultural terms as a "way of life.*"

The re-emergence of Hindutva as a latest, dynamic, and nationalist philosophy in the first two decades of this century can be considered as the most important historical event in Bharat-Bhoomi. For the last 400-500 years, the term 'Hinduism', which has been the most prominent 'way of life' (Dharma), has always been depicted as a society, which is shattered into and divided into hundreds of castes and sub-castes, several languages, and numerous regional cultures and traditions. The intellectual forces that defined these terms were so strong and influential that they deliberately ignored the bright side of Hindu Dharma (the way of life) of the Bhartiya sub-continent. Hindutva believes that we had a great past and many of the social evils that we now encounter, such as Sati-Pratha, Caste-discrimination, Ghunghat, Parda, Bhrun-hatya, Bal-vivah, confining women into houses, have their origin in the medieval era and not in ancient Bharat. These social evils were developed by different communities, probably to save themselves from the barbaric invaders.

It's a historical fact that Hinduism never tried to become an expanding religion by using force. It never tried to attract people from other religions or cultures by forcefully converting them, but it always expanded through culturally and academically influencing others, and unlike Islam, never expanded militarily or forcibly or by luring others like Christianity. In some ways, it was good, but at the same time, it had some bad effects too. In 1947, when Bharat gained independence from the British Empire, Muslims got a separate nation, Pakistan, because their leader, Mr. Jinnah, had thought that Islam was a separate nation, so Muslims needed a separate country.

On the other hand, the innocent and helpless Hindus living on the western banks of the Indus River had to leave their homes where they had been living for hundreds of years. They had to leave all their belongings and come to Bharat as refugees, just to save their lives and their religious beliefs. The situation of Hindus in this part of Bharat was also not satisfactory, as the top politicians were busy only in appeasing the minority community and ignoring the real needs

of the majority community. Thus, the Hindus of the newly independent Bharat became helpless and confused in their own land. 'Hinduism', which has been the greatest civilization ever developed on our planet, is now struggling to maintain its existence in its own motherland. This is one of the saddest events in the history of mankind, and nothing can be more devastating and painful for any community. Now, when a new generation of Hindus is asking questions about this injustice, the leftists are simply calling them 'communal'. Are they really communal? Is it not an injustice? It is a big question!

After losing the Lok Sabha elections in 2009, the BJP decided to promote Shri Narendra Damodardas Modi as the future candidate for the post of Maha-Amatya (Prime Minister). This was one of the path-changing and revolutionary ideas in the history of Bhartiya politics. By abandoning the ancient idea that only the elite class can hold the post of Prime Minister. Maha-Amatya, Modi emerged as a Hindu icon in a natural process as he faced and braved a continued and unjustified onslaught by leftists and Islamic fundamentalists combined. RSS supported him for his uncompromising attitude towards the re-emergence of Bharat. The rise of our Maha-Amatya (Prime Minister), Sri Narendra Modi, from such a simple background to the highest post in constitutional Bharat astonished the entire world. This was a remarkable and unique event in any country like Bharat. Here we need to note that an OBC or a woman becoming a head of state is new for modern Bharat, but not for ancient Bharat. We have plenty of such examples wherein 'deserving' persons from Sikh, Maratha, Maurya, Pasi, Chandal, and even women from other communities (those are now being considered as OBC or Dalits) had become the rulers.

Hindutva has always been articulated by Leftists as a result of post-colonial Bharat, which re-establishes this collective identity through a political lens and, in more contemporary terms, explicitly as a resistance to British rule. Today Hindutva has enabled Hindu leaders like Shri Kapil Sharma of the BJP to issue a public ultimatum declaring to the Government that if the police did not clear the streets of a protest against a new citizenship law seen as anti-Muslim, his supporters would be 'forced to hit the streets'. This can't be seen as a sudden change, but it's an effect of emerging Hindutva in Bharat-Bhoomi. This change is exactly 180 degrees against the age-old perception of Hinduism. As per the author's personal opinion, *"It started on the basis of Newton's third law, which says, for every action there is always an equal and opposite reaction. So, now 'Hindutva' emerges as a reactionary result of all atrocities and discrimination done against Hindus in the last 2-3 centuries."*

The administrative decisions taken by the present Chief Minister of Assam, Shri Himanta Biswa Sarma, to eliminate the root cause of many problems in Assam have proved the new idea that 'the most deserving person can come from any background'. He has rejected the concept of Western secularism in Assam. He had taken many steps towards the revival of 'Sanatan' values in the Bhartiya society. During the 19th period, he announced relief packages for temple priests in Assam, which are clear signs of the rise of 'Hindutva' in the new Bharat. Mr Sarma openly claimed that all Bhartiya people following other religions are descendants of Hinduism. Indeed, it is a way of life. How can anyone stop it? It has been flowing through the thousands of years in this part of the world.

Again, the decision of Uttar Pradesh Chief Minister Yogi Adityanath Ji, not to attend his father's funeral due to his scheduled meetings in various programs for the prevention of COVID-19 in the state, shows the true character of Hindu ideology and is a perfect example of 'selfless duty'. At many places, Yogi Ji has openly declared that Yogi always works for the benefit of society. His achievement in converting UP from *Uttar Pradesh* to *Uttam Pradesh* is a great achievement. Now the whole world is praising Yogi Ji's ability and commitment to make his state *'Aatmanirbhar'* and his tireless efforts to increase its economy to a One Trillion US dollar economy by 2027.

Now, Hindus have accepted this proven fact that greatness does not come by mere birth, but it can also be achieved by going through hardships and circumstances. Acharya Chanakya described this in his book some two thousand three hundred years ago, *पुरुषः कर्मणा महान् भवति, न जन्मना।'* (A person becomes great not by his birth but by his deeds). Once this new order is established and accepted by all the Hindus in Bharat, no one can stop Bharat from becoming Vishwa Guru, and Hindutva will certainly be the driving force behind it. This is the best path to achieve world peace and harmony with brotherhood by the first half of the 21st century.

A new definition of nationalism has emerged not only in Bharat but also all over the world. This philosophy advocates selfless and dedicated service to one's country. And the entire credit for recognizing the changes in Bharatiya society goes to the Most Reverend Sarsanghchalak, Dr Mohan Bhagwat Ji. Along with this, he never minds honouring any common volunteer like

Late Mangal Prasad, who dedicated his entire life to the responsibility of 'cook' at the RSS headquarters in Nagpur.

The construction of the Ayodhya Ram Mandir has also played an important role in the history of Bharat. This temple has not only instilled a sense of nationalism in the minds of the non-Hindu population of Ayodhya but has also helped develop communal harmony among the followers of all religions there. The resolution of the centuries-old dispute has become a symbol of unity, bringing together people from different backgrounds to celebrate the shared cultural heritage of this land. Now, the heads of Muslims are also seriously thinking about resolving the pending cases of Krishna Janmabhoomi and Kashi Vishwanath Temple.

Critics often call Hindutva an attempt to establish Hindu supremacy in Bharat, but now it has proved wrong. Now everyone has realized that Hindutva is not against any Bhartiya citizen or followers of any faith, as we all are the descendants of the great Gods of this holy land. Most Reverend Sarsanghchalak, Dr Mohan Bhagwat Ji has made it clear by defining 'who is a Hindu' in the simplest way during his Hyderabad speech in December, 2019, "Every Bhartiya, who considers Bharat as his motherland, no matter where he is from, whatever language he speaks or whatever religion he follows, is a 'Hindu'." He also added that Bharat, by culture and traditions, believes in Hindutva ideology. His statement has revealed the truth of Hindutva. Hindutva is just a new name given to its refined form of age-old Hindutva. Now there is no space for any kind of confusion or miscommunication.

Moreover, 'Hindutva' is spreading its ideology by implementing new, remarkable ideas of *'Ghar-Wapasi'*. This has already started in various parts of Bharat, and now many non-Hindu Bhartiya people are voluntarily giving up their artificial identity and returning to their original roots. And now the followers of Hindutva are also accepting them wholeheartedly. This is a revolutionary development initiated in Bharat-Bhoomi, and this process will definitely gain momentum in the coming years. As per a PTI Report, Vishva Hindu Parishad leader Shri Pravin Togadia claimed that the VHP alone had reconverted more than five lakh (500,000) Christians and two and a half lakh (250,000) Muslims. He is reported to have said, "Our rate of *Ghar Wapsi* used to be around 15,000 each year. But last year, we have crossed the mark of 40,000; If Hindus need to be in majority in Bharat and to save our religion, we have to engage in many more *Ghar Wapsi* drives to bring crores of others into our religion" The time has come when all Hindus should unite and try to use their best ability to bring back the lost glory of Bharat as

it has become their moral duty. The RSS claimed to have Ghar Wapsi of 53 tribal families in 2017 in Jharkhand. Their heads were smeared with sandalwood paste, and their feet were washed by Hindu Priests in a purification ceremony. "You cannot call it conversion. We are only bringing back our lost brothers and sisters to their religion," a local BJP functionary claimed.

RSS strongly believes that Bharat, in its present form itself, is a Hindu nation and there is no need to convert it to any religion as it's 'a way of life'. RSS is making an effort only to make everyone realise that the nation derives its strength from its ancient values, traditions, and knowledge, and that is why it is a Hindu nation. Mr Mihir Meghani, co-founder of the Hindu American Foundation, a longtime member of the Hindu Swayamsevak Sangh, writes in his book Hindutva: The Great Nationalist Ideology, *"India's future is determined. Hindutva is here to stay. It is up to Muslims to decide whether they will join India's new nationalist spirit or not."* Today, the philosophy of 'Hindutva' is unanimously accepted as the only way to achieve this great objective in a very practical way. Mr Balmukund Pandey, head of the RSS's History Research Branch, says: *"The time has now come to restore the glory of Bharat's past by establishing that the ancient Hindu scriptures are not myths but facts."* It is the duty of every Hindu to do their best to consolidate the Hindu society. This way, our great nation, Bharat, can reveal the path of peace, harmony, and universal brotherhood to the entire world.

पुस्तक समीक्षा

ISSN: 2583-391X

The Coming Wave by Mustafa Suleyman

डॉ. मनीष कुमार सिंह,
सहायक प्राध्यापक,
संगणक विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

मुस्तफा सुलेमान की पुस्तक "द कमिंग वेव" कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) और बायोटेक्नोलॉजी द्वारा लाई जा रही गहन परिवर्तनों की एक विचारोत्तेजक पड़ताल है। दीपमाइंड के सह-संस्थापक और एआई क्रांति में एक प्रमुख व्यक्ति के रूप में, सुलेमान तकनीकी विशेषज्ञता और दार्शनिक दृष्टिकोण को मिलाकर इन प्रौद्योगिकियों से उत्पन्न सामाजिक और नैतिक चुनौतियों पर चर्चा करते हैं।

तकनीकी व्यवधान का दृष्टिकोण

सुलेमान अपनी पुस्तक को "आने वाली लहर" के इर्द-गिर्द केंद्रित करते हैं, जो तकनीकी व्यवधान का प्रतीक है। उनका मानना है कि एआई और बायोटेक्नोलॉजी एक महत्वपूर्ण मोड़ पर पहुँच चुके हैं, जो मानव सभ्यता को अभूतपूर्व पैमाने पर बदलने के लिए तैयार हैं। पुस्तक में इन प्रगति की दोहरी प्रकृति पर प्रकाश डाला गया है - जहां एआई जलवायु परिवर्तन जैसे वैश्विक मुद्दों को हल करने और स्वास्थ्य सेवा में सुधार लाने का वादा करता है, वहीं यह असमानता को बढ़ाने, लोकतंत्रों को अस्थिर करने और अप्रत्याशित शक्ति वाले उपकरण बनाने का जोखिम भी रखता है।

मुख्य विषय और अंतर्दृष्टि

1. शक्ति और जिम्मेदारीः सुलेमान वैश्विक सहयोग और विनियमन की आवश्यकता पर चर्चा करते हैं ताकि एआई को जिम्मेदारी से उपयोग किया जा सके। वे सरकारों और संस्थानों की तैयारी की कमी की आलोचना करते हैं।

2. त्वरित परिवर्तन का युगः लेखक बताते हैं कि एआई और बायोटेक्नोलॉजी का मेल नवाचार और व्यवधान की गति को तेज करेगा, जिससे दुनिया अधिक परस्पर जुड़ी लेकिन अधिक नाजुक हो जाएगी।

3. नैतिकता और शासनः एक केंद्रीय विषय यह है कि शक्तिशाली प्रौद्योगिकियों को विकसित और लागू करते समय नैतिक दुविधाएँ कैसे उत्पन्न होती हैं। सुलेमान इन उपकरणों को मानवता के लिए लाभकारी बनाने के लिए एक नई "नियंत्रण" रणनीति की वकालत करते हैं।

पुस्तक की विशेषताएँ

विशेषज्ञता और सुलभताः सुलेमान के अनुभव से उनकी विश्लेषण में विश्वसनीयता आती है, और उनकी सरल लेखन शैली जटिल विषयों को व्यापक दर्शकों के लिए सुलभ बनाती है। समय पर और प्रासंगिकः पुस्तक एआई प्रगति और विनियमन पर बहस के इस युग में गहराई से प्रासंगिक है। संतुलित दृष्टिकोणः सुलेमान न तो केवल तकनीकी आशावाद में लिप्त होते हैं और न ही केवल भयावहता का वर्णन करते हैं, बल्कि अवसरों और जोखिमों का संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं।

कमियाँ

हालाँकि पुस्तक विचारों में समृद्ध है, यह कभी-कभी क्रियान्वयन योग्य समाधानों की पेशकश में कमी महसूस करती है। शासन के लिए सुलेमान के प्रस्ताव, भले ही प्रेरक हों, वैश्विक राजनीति की बिखरी हुई प्रकृति को देखते हुए आदर्शवादी लग सकते हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ पाठकों को कथानक में चुनौतियों पर अधिक जोर दिया गया महसूस हो सकता है, जबकि व्यापक सकारात्मक परिवर्तन की संभावनाओं पर कम ध्यान दिया गया है।

निष्कर्ष

"द कमिंग वेव" उन सभी के लिए एक आवश्यक पुस्तक है जो समझना चाहते हैं कि एआई और बायोटेक्नोलॉजी हमारे विश्व में कैसे बड़े बदलाव ला रहे हैं। मुस्तफा सुलेमान गहन तकनीकी अंतर्दृष्टि को एक नैतिक आह्वान के साथ जोड़ते हैं, जो हमें इस परिवर्तनकारी युग को सावधानी, बुद्धिमत्ता और मानवता के साथ नेविगेट करने का आग्रह करता है। हालाँकि पुस्तक सवाल अधिक उठाती है और उत्तर कम देती है, यह भविष्य और उन मूल्यों के बारे में एक महत्वपूर्ण संवाद को प्रेरित करने में सफल होती है, जो हमें मार्गदर्शन करना चाहिए। यह एआई पर बढ़ते साहित्य में एक समयानुकूल और आवश्यक योगदान है, जो नीति निर्माताओं, प्रौद्योगिकीविदों और आम पाठकों के लिए अनमोल है।

विविधा

ISSN: 2583-391X

■■■

शिवाय:

भावना शर्मा
Poetry YouTube Channel: Akshmaa

ओ नीलकंठ! ओ कैलाशी!
ओ काशी वाले सन्यासी!
ये कैसा रूप सजाया है ?
नटराज नाम भी पाया है !

सर्पों की माला गले तेरे,
डमरू डमक बजाया है !

गंगा को जटा में बांध लिया,
कैसे चंदा सर साध लिया ?
क्या विष पीकर शंकर तुमने,
विवाद का एक प्रतिवाध किया ?

तुमसा ना कोई एकाग्र हुआ,
तुम देवों के भी देव हुए,
ना आभूषण श्रृंगार किया,
फिर भी शंकर महादेव हुए !

तुम प्रेम में सर्वोपरि हुए,
अब भूत प्रेत के हरि हुए,

तुमने सबको स्वीकार लिया,

फिर भी शून्य को धार लिया!

कावड़ प्रीति हुई तुम्हारी,

साधनाओं के तुम अविकारी,

रुद्र अग्नि को भीतर रखकर,

तुम होगे भोले भंडारी!

तुम उच्च चेतना वासी हो,

तुम अंतर्मन सन्यासी हो,

तुम प्रेम का सबसे उच्च शिखर,

तुम बसे कहीं मन के भीतर !

तुमसे ही समता आई है,

तिरस्कृत आत्मा अपनाई है,

भूत, प्रेत, विष, नाग, जटा,

सबने सुख धारा पाई है!

आंसू बाद की आस हो तुम,

शकंर मेरा विश्वाश हो तुम,

मन घिरा घना अंधियारों में,

मेरे लोचन का प्रकाश हो तुम!

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ 11 ॥
ईशावास्योपनिषद्

अर्थात जो विद्या और अविद्या – इन दोनों को ही एक साथ जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र समुद्रमंथन के सामान ज्ञान मंथन का वह सागर है जहाँ विष रूपी अज्ञान को दूर कर अमृत रूपी ज्ञान संचार होता है।

समाज के प्रत्येक वर्ग के बुद्धिजीवी जैसे शिक्षाविद, प्राध्यापक, शोधार्थी, प्रशासक, उद्यमी, व्यवसायी, पत्रकार, लेखक, चिन्तक, प्रबुद्ध जन इस ज्ञान मंथन रूपी महासागर में वासुकी रूपी बुद्धि द्वारा विभिन्न विषयों के मंथन से समाज को नवीन दिशा प्रदान करने का कार्य कर रहे हैं।

इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र में जहाँ अध्ययन की सतत प्रक्रिया गतिमान रहती है, वहीं जीवंत सोच, सकारात्मक ऊर्जा और सक्रियता भी अखंड रूप से प्रवाहित रहती है। अध्ययन केंद्र शोध की वह प्रयोगशाला है जहाँ समाज में फैले वैचारिक संभ्रमों को तार्किकता और वैज्ञानिकता की कसौटी पर परख कर सत्यता का बोध व दर्शन किया जाता है। समाज से जुड़ा प्रत्येक वर्ग ज्ञान पिपासु भी स्व और स्वत्व के विषयों जैसे सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक व मानसिक द्वंद्वों को दूर कर नई चेतना का प्रवास अध्ययन केंद्र में पाता है।

इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र न केवल समाज में फैले संभ्रम को शोध की प्रयोगशाला में दूर करने का प्रयास कर रहा है अपितु समाज के जागृति हेतु तात्कालिक विषयों पर राष्ट्रीय संगोष्ठी, व्याख्यान, प्रेरक संवाद और कार्यशाला भी आयोजित करता रहता है।

इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र सदैव समाज में रहने वाले प्रबुद्ध एवं सक्रिय जनों की भागीदारी की अपेक्षा रखता है तथा भारत विश्वगुरु बने इस पावन विचार को लेकर चलायमान रहता है। सभी भारतवासियों से यही आग्रह है की इस पवित्र अश्वमेध रूपी अध्ययन केंद्र से जुड़कर भारत को विश्वगुरु बनाने में हेतु अपनी महत्वपूर्ण योगदान दें।

मूल्य : ₹ 100/-

इन्द्रप्रस्थ शोध संदर्श

कार्यालय :-

ए -1 / 7, श्रीराम कुटीर, द्वितीय तल, चाणक्य प्लेस,
पंखा रोड, नई दिल्ली -110059
ईमेल :- ipss..ipak@gmail.com
सचल दूरभाष :- 9811149925, 9868084938